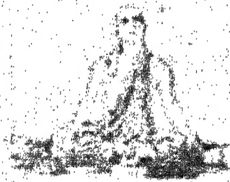
ॐ

# स्वामी रामतीर्थ

## भाग बारहवाँ



परमहंस स्वामी रामतीर्थ

प्रकाशक,
श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग।
लखनऊ।

वर्ष दूसरा। श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली खण्ड चौथा

श्री

# स्वामी रामतीर्थ।

## उनके सदुपदेश—भाग १२।

प्रकाशक—

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग।

लखनऊ।

प्रथम संस्करण } —:o:— { नवम्बर [illegible]
प्रति २००० } { कार्तिक १९८[illegible]

मूल्य प्रति कापी डाक व्यय सहित।

सजिल्द ॥=) } [illegible] { अजिल्द ॥-)

## विषय-सूची ।

| विषय | | | | पृष्ठ |
|---|---|---|---|---|
| [illegible] | ... | ... | ... | १—२४ |
| [illegible] कि [illegible]? ) | ... | ... | ... | १—६६ |
| [illegible] । | | | | |



# श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग।

की

## उत्पत्ति और गत वर्षों की रिपोर्ट।

( जो लीग के गत [illegible] सन् १९२१ [illegible] कार्तिक कृष्ण [illegible]
सं० १९७८ के [illegible] में पढ़ी गई )

---

श्रीमान् सभापति जी,

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग का आज दूसरा वर्ष समाप्त होता है, बड़े हर्ष और उत्साह के साथ यह रिपोर्ट आपकी सेवा में उपस्थित की जाती है।

१९ नवम्बर सन् १९२० ई० को श्री स्वामी स्वर्ग ज्योति ने मुझे मंत्रीपद का भार दिया। और यह प्रथम वर्ष की रिपोर्ट लिखे बिना ही चल दिये। इसलिये यह रिपोर्ट जब से यह लीग नियमित रूप से स्थापित हुई है तब से आज तक की है।

इस [illegible] ब्यौरा देने से प्रथम यह कह देना उचित प्रतीत होता है कि दिवाली सं० १९६३ विक्रम अर्थात् अक्तूबर १९०६ ई० को राम की अकस्मात जल-समाधि होने पर बहुत सी हार्दिक उमंगों पर पानी फिर गया था। पर मसनवी [illegible] का कथन है कि "है बुराई भी इक जीना भलाई के लिये," इसलिये राम के शारीरिक वियोग में राम-प्रेमी को राम का निम्न लिखित वाक्य स्मरण हुआ।

दर सखुन पिन्हा शुदम चूँ बू-ए-गुल दर बर्ग-गुल।
हर कि दीदन मैल दारद दर सखुन बीनद मरा॥

अर्थ—अपने वचनों में हूँ छिपा ऐसे।
पुष्प-गंध पंखड़ी में है जैसे॥
मेरे दर्शन की चाह हो तुम को।
मेरे वचनों में ढूँढ ले मुझको॥

इस प्रकार राम के वचनों में रामदर्शन की उमंग हृदयों में जोश मारने लगी। और साथ २ यह भी ख्याल उठ आया कि राम के वचन रूपी पतित पावनी गंगा की पवित्र धारा के प्रकट होने पर उसका शीतल और अमृत रूपी जल (उपदेश) न केवल वर्तमान वरन् भविष्य के तप्त हृदयों की पिपासा को भी शांत कर देगा, और उस (वचन रूपी गंगा) में स्नान करने वाला (जिज्ञासु) चाहे किसी देश-काल का क्यों न हो उसके (उपदेश रूपी) जल से अवश्य निर्मल, पवित्र, और शुद्धात्मा हो जायगा. जिससे आत्मानुभव सहज और शीघ्र हो जायगा।

इस पर हृदयों में यह प्रश्न उठा कि इस गंगा को लाने के लिये कौन भागीरथ बने? अर्थात् कौन इस काम को हाथ में ले? इस अवसर पर सब की दृष्टि भगवान् राम के प्रसिद्ध शिष्य श्रीमान् आर. एस. नारायण स्वामी पर पड़ी, और उनसे प्रार्थना की गई कि इस काम को वे अपने हाथ में लें और स्वामी राम की एक जीवनी लिखें। परन्तु उनसे यह उत्तर मिला कि [illegible] अब एकान्त सेवन का आरहा है और राम बनकर वापिस आना चाहता है।" पर इस उत्तर से नम हृदयों को शान्ति नहीं हुई। इसलिये राम भक्तों के आग्रह पर स्वामी [illegible] रामके सब लेखों व [illegible] को राम के परम भक्त श्रीयुत पूर्णसिंह जी को दे दिये, जिन्होंने इनके प्रकाशन करने का भार अपने शिर पर ले लिया। आपने राम भगवान् के उन [illegible] को जो उन्होंने अमरीकादि देशों में दिये थे और जिनकी [illegible] कापियाँ राम भगवान् के बस्तों में मिली थीं, उनका खूब [illegible] किया और उनकी नक़लें भी भली प्रकार कई भागों में करली, पर उनके छापने का प्रबन्ध वे एक वर्ष तक न कर सके। तब तो कई एक स्वार्थी पुरुष स्वामी राम की जीवनी या एक आध लेख को छाप कर और अपने आपको स्वामी राम का शिष्य कह कर राम-भक्तों से स्वामी राम के सम्पूर्ण लेख छपाने के नाम से चन्दा बटोरने लगे, और अपनी छोटी २ पुस्तकों के मन माने [illegible] बेचने लगे। इन पुस्तकों की न लिखाई छपाई शुद्ध थी, और न इनका काग़ज़ ही अच्छा था। इनकी आकृति से ही पाठक के चित्त में घृणा वा अरुचि उत्पन्न हो जाती थी। इस पर उपरोक्त नारायण स्वामी को [illegible] के बार २ आग्रहों से विवश होकर एकान्त सेवन त्याग कर पब्लिक में आना [illegible]

नहीं. स्वामी राम के कथनानुसार "खिलवत में जिलवत" अर्थात् सत्संग में एकान्त का आनन्द लेना पड़ा। यहाँ तक कि आज इधर कोई ऐसा पब्लिक का लोकोपकारी कार्य नहीं दिखलाई पड़ता जिसमें नारायण स्वामी का हाथ न हो। "दयानन्द सेवा समिति," "यू. पी. धर्म रक्षण सभा" "और अखिल भारत वर्षीय हिन्दु महा सभा" आदि के कार्यों के अतिरिक्त और और संस्थाओं में भी स्वामी जी को उपदेश देने के लिये अनेक स्थानों पर जाना पड़ता है। और रात दिन इस प्रकार निष्काम कर्म करते हुए काम में आराम और आराम में काम करना पड़ता है।

इस प्रकार स्वामी नारायण जी के सिर पर यह सब कार्यभार आ पड़ा। और उनकी आज्ञानुसार दिल्ली निवासी प्रसिद्ध मास्टर अमीरचन्द ने अपनी गाँठ से २०००) रुपये स्वामी राम के अंग्रेज़ी व्याख्यानों की प्रथम जिल्द (In Woods of God Realization Vol. I) के प्रकाशन के लिये सन् १९१० में लगाये। और नारायण स्वामी के परिश्रम से यह पुस्तकें प्रकाशित होते ही राम भक्तों में एक मास के भीतर २ हाथों हाथ बिक गईं। इसकी बिक्री के रुपये से दूसरी जिल्द छपी, दूसरी की बिक्री से तीसरी, और तीसरी की बिक्री से चौथी जिल्द छपी। इसके साथ २ इन जिल्दों के दूसरे संस्करण की भी आवश्यकता पड़ती रही जिसके लिये मास्टर अमीरचन्द जी ने ३०००) रुपये और दे दिये। इस प्रकार स्वामी राम के अंग्रेज़ी व्याख्यान नोटबुकों सहित सबके सब सन् १९१३ ई० तक छप गये, जिनके अध्ययन ने अंग्रेज़ी जानने वालों के हृदयों में एक नई रूह फूंक दी।

अँग्रेज़ी व्याख्यानों के छपने पर फिर उर्दू [illegible] के प्रकाशन की भारी पुकार उठी, परन्तु उक्त ५०००) रु० लाला [illegible] जी से केवल अंग्रेज़ी [illegible] के प्रकाशन के लिये ही मिला था जिसको अन्य कार्य में लगाना उचित नहीं था, इस लिये उर्दू [illegible] श्री नारायण स्वामी को राम भक्तों के पास अलग फण्ड के लिये लिखना पड़ा। जिसपर लगभग ६०००) रु० राम-भक्तों से प्राप्त हुआ. जिनके नाम उर्दू पुस्तक [illegible] ए-राम अर्थात् [illegible] राम की भूमिका में दे दिये गये हैं। इस फण्ड से उर्दू में निम्न-लिखित पुस्तकें अति सुन्दर आकार, लिखाई और छपाई से प्रकाशित हुईं।

(१) वेदानुवचन (२) राम वर्षा भाग १,

(३) राम वर्षा भाग २ (४) [illegible] खुमे-राम।

(५) [illegible] राम या [illegible] भाग १।

उक्त उर्दू और अंग्रेज़ी पुस्तकों के प्रकाशन में जो परिश्रम नारायण स्वामी जी ने किया वह छिपा नहीं है। चारों ओर संसार में इन पुस्तकों की धूम मच गई। ऐसे अच्छे कागज पर, ऐसी अच्छी लिखाई, छपाई की पुस्तकें, कि जिन से उत्तमोत्तम भाव प्रकट होते हैं, ऐसे सस्ते दामों पर देना केवल नारायण स्वामी जी ही का काम था।

इसी काल में स्वामी जी की आज्ञा और प्रेरणा से गुजराती और मरहटी भाषाओं में भी स्वामी राम के लेखों और व्याख्यानों का प्रचार होगया। परन्तु हिन्दी भाषा में जो समस्त भारतवर्ष की ( Lingua Franca ) राष्ट्र-भाषा हुआ चाहती है इनका क्रमशः प्रकाशन न हो सका। केवल उपासना पर एक लेख और वेदान्त के फुटकल

विषयों पर कुछ व्याख्यान स्वर्गवासी रायबहादुर लाला बैजनाथ तथा पं० [illegible] चतुर्वेदी द्वारा प्रकाशित हुए थे । और गुजरात देश के एक दो राम भक्तों द्वारा श्री नारायण स्वामी से रचित रामवर्षा के दोनों भाग भी हिन्दी में प्रकाशित कराये गये थे।

जब अधिक काल तक अँग्रेज़ी और उर्दू भाषा के व्याख्यानों व लेखों के प्रकाशन में निरन्तर प्रवृत रहने के कारण हिन्दी अनुवाद का काम स्वामी नारायण जी शीघ्र अपने हाथ में न ले सके, तो ऐसे समय में कुछ एक ने स्वार्थ दृष्टि से प्रेरित होकर स्वामी जी के इधर उधर से दो चार अँग्रेज़ी व उर्दू व्याख्यानों का गलत मलत अनुवाद करके अति सस्ते और निकम्मे कागज पर छपवाकर उनको लागत से पूरे पाँच गुणा दामसे बेचना शुरू करदिया । लोगों का ऐसा निकृष्ट व्यवहार राममक्तों से न देखा जासका । इस लिये जो पूर्वोक्त उर्दू-पुस्तकों का फण्ड था और जिसको स्वामी नारायण ने स्वामी रामतीर्थ पुस्तक-प्रकाशन समिति के नाम से राम भक्तों की एक छोटी सी संस्था बनाकर उसके स्पुर्द कर रक्खा था, उसको हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन में ही लगाने के लिये सर्व ओर से शोर मचा । और जो संस्था पहिले केवल चार व्यक्तियों की होने के कारण प्रसिद्ध नहीं थी उसे नियमित रूप से स्थापन करने की तीव्र इच्छा बहुत राम भक्तों में उमड़ आई । और उनकी ऐसी इच्छा पर एक बैठक जनवरी सन् [illegible] में की गई, जिसमें स्वामी स्वयं अर्थात लखनऊ, अमीनाबाद हाईस्कूल के हेडमास्टर श्रीयुत बेनीप्रसाद, एम. ए. एल. टी के स्थान पर मन्त्री नियत हुए और लीग को नियमित रूप से स्थापन करने

का निश्चय किया गया। फिर एप्रिल सन् १९१९ में राम-भक्तों की दूसरी बैठक बैठी, जिसमें स्वामी नारायण ने समस्त प्रकाशित उर्दू-पुस्तकें, जो उक्त फण्ड से छपी थीं, सहित प्रकाशन के अधिकार इत्यादि के इस नियमित रूप से स्थापन होने वाली लीग को सुपुर्द करना स्वीकार किया, और एक राम-भक्त पं० [illegible] मैथानी ने बिना किराये के अपना विशाल मकान भी लीग के दफ्तर के लिये बर्तने को देना स्वीकार किया; जिस पर पहिली मई सन् १९१९ से लीग के बाकायदा दफ्तर खोलने का प्रस्ताव पास हुआ।

इस प्रकार पहिली मई सन् १९१९ में नं० १० [illegible] रोड के मकान में सब प्रकाशित पुस्तकें लेजाकर दफ्तर लीग का खोला गया। इसके बाद दो बैठकों में नियम तैयार किये गये, जिनको सहित एक विस्तृत पत्र (Circular letter) के छापकर राम-भक्तों के पास सम्मति के लिये भेजा गया। और सम्मति प्राप्त होने पर ४ अक्तूबर १९१९ को लीग की पुनः बैठक बुलाई गई, जिसमें लीग के नियम कुछ २ संशोधनों (Amendments.) के साथ सर्व सम्मति से पास किये गये, और लीगका [illegible] आरम्भ [illegible] से होना निश्चय किया गया।

इस प्रकार निम्न-लिखित उद्देश्य से २३ अक्तूबर सन् १९१९ तदनुसार कार्तिक कृष्ण १५ संवत् १९७६ को लीग नियमित रूप से स्थापित हुई।

उद्देश्य:—

(क) विशेषतः ब्रह्मलीन श्री स्वामी रामतीर्थ जी के लेखों व्याख्यानों तथा जीवन चरित्र को और,

(ख) [illegible] उनके उपदेशों के अनुकूल अन्य ग्रन्थों को भी भिन्न २ भाषाओं में उत्तम शैली और मनोहर रूप में विषयों की विशुद्धता और मौलिकता की संरक्षा करते हुए प्रकाशित करना और उन्हें यथा सम्भव सस्ते मूल्य पर बेचना।

और १४ दिसम्बर सन १९१९ को बैठक में पास हुए [illegible] लीग की [illegible] रजिस्ट्री भी एक्ट २१, सन १८६० के अधीन २३ जनवरी सन १९२० को की गई। परन्तु लीग का वर्ष कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा (जिस दिन कि राम का शारीरिक जन्म हुआ था) से आरम्भ होता है। इस प्रकार यह रिपोर्ट कार्तिक कृष्ण १५ संवत १९७६ से कार्तिक शुक्ल १ संवत् १९७८ तक अर्थात् लीग के पूरे दो वर्षों की है।

लीग के इन दो वर्षों में सारे १४ अधिवेशन हुए जिनमें से ७ तो लीग के और ७ लीग के प्रबन्धक मण्डल के हैं। और कार्तिक शुक्ल १ सं० १९७८ तक २९ सभ्यगण हुए, जिनमें ४ संरक्षक (३ शुल्क दाता और १ सम्मानित), १४ सदस्य (११ शुल्क दाता और तीन सम्मानित) और ११ संसर्गी हैं। इनकी नामावली परिशिष्ट (क) में दीगई है।

प्रथम वर्ष में प्रबन्धक मण्डल के सदस्य निम्न लिखित सभ्यगण चुने गये थे:—

(१) श्रीयुत बेनीप्रसाद भटनागर एम० ए० एल० टी० हेडमास्टर, कालीचरण हाईस्कूल, लखनऊ (सभापति)।

(२) श्रीयुत [illegible]।

(१) श्रीयुत सूरजनारायण पाण्डे मन्त्री साधारण धर्मसभा फैज़ाबाद (ऑडिटर अर्थात् आय-व्यय परीक्षक)।

(४) श्रीमान् आर. एस. नारायण स्वामी जी (संरक्षक) नं० १६ [illegible] रोड लखनऊ।

(५) श्रीयुत रायबहादुर लाला सालिगराम रईस, बैंकर और ठेकेदार, नगनी मुहल्ला का बाजार, लखनऊ।

[illegible] श्रीयुत [illegible] सेक्रेटरी रिलीजन [illegible] नं० १० [illegible] रोड, लखनऊ।

(७) श्रीयुत नारायण स्वरूप भटनागर बी. ए. एल. टी. [illegible] मास्टर, अमीनाबाद हाई स्कूल, लखनऊ।

द्वितीय वर्ष में प्रबन्धक मण्डल के सदस्य निम्नलिखित सभ्यगण चुने गये।

(१) श्रीयुत बेनीप्रसाद भटनागर एम. ए. एल टी हेडमास्टर, अमीनाबाद हाईस्कूल, लखनऊ (सभापति)।

(२) श्रीयुत सूरजनारायण पाण्डे, मन्त्री साधारण धर्म सभा फैज़ाबाद, (मन्त्री)।

(३) श्रीयुत नारायण स्वरूप, बी. ए. एल. टी. [illegible] अमीनाबाद हाईस्कूल, लखनऊ (ऑडिटर अर्थात् आय [illegible])

(४) श्रीयुत आर. एस. नारायण स्वामी जी (संरक्षक)।

(५) श्रीयुत रायबहादुर ला० सालिगराम जी रईस व ठेकेदार नगनी मुहल्ला का बाजार, लखनऊ (जो पीछे स्वर्गवास करगये)।

(६) श्रीयुत रामचन्द्रवीर लाल रईस, आनरेरी मजिस्ट्रेट, फैज़ाबाद, (संरक्षक) ।

(७) श्रीयुत सुन्दरलालचन्द बुकसेलर व पब्लिशर्स, चान्दनी चौक, देहली ।

और आगामी वर्ष (सं० १९६९) के लिये निम्नलिखित सज्जनगण प्रबन्धक मण्डल के सदस्य चुने गये हैं ।

(१) श्रीयुत बेनीप्रसाद एम. ए. एल. टी. हेडमास्टर अमीनाबाद हाईस्कूल, लखनऊ, (सभापति) ।

(२) श्रीयुत सूरजन लाल पाण्डे, मन्त्री सार्वजनिक धर्मसभा, फैज़ाबाद, (मन्त्री) ।

(३) श्रीयुत नारायण स्वरूप, बी. ए. एल. टी. सैकण्डमास्टर, अमीनाबाद हाईस्कूल, लखनऊ, संरक्षक, (ऑडिटर) ।

(४) श्रीयुत आर. एस. नारायण स्वामी (संरक्षक) ।

(५) श्रीयुत [illegible] जी रईस व ठेकेदार, गगनी शुक्ल का तालाब, लखनऊ (संरक्षक) ।

(६) श्रीयुत [illegible] बुकसेलर्स, पब्लिशर्स, चान्दनी चौक, देहली ।

(७) श्रीयुत रामदयाल, बी. ए. म्यावरी, (ज़िला झांसी) ।

इन दो वर्षों में ५४३५) रु० सदस्यों का शुल्क और [illegible] दान के रूप में राम भक्तों से प्राप्त हुआ जिसमें से लगभग ५५००) रु० का दान श्रीमान् आर. एस. स्वामी नारायण जी महाराज द्वारा आया । आय व्यय का विस्तार पूर्वक चिट्ठा परिशिष्ट (ख) में दिया गया है ।

उक्त फण्ड, वार्षिक शुल्क, तथा पुस्तक बिक्री की सहायता से तीस हज़ार से अधिक कापियाँ पुस्तकों की गत दो वर्षों में प्रकाशित की गईं, जिन की सूची निम्न-लिखित है:—

| नं० | नाम पुस्तक | संख्या |
|---|---|---|
| (१) | हिन्दी ग्रन्थावली भाग १ | ३००० |
| (२) | ,, भाग २ | ३००० |
| (३) | ,, भाग ३ | २,७५० |
| (४) | ,, भाग ४ | २००० |
| (५) | ,, भाग ५ | २००० |
| (६) | ,, भाग ६ | २००० |
| (७) | ,, भाग ७,८ | २,५०० |
| (८) | ,, भाग ९ | २,५०० |
| (९) | ,, भाग १० | २००० |
| (१०) | ,, भाग ११ | २००० |
| (११) | ब्रह्मचर्य की कापी मुफ्त बांटने के लिये | ४००० |
| (१२) | राम के व्याख्यानों की अंग्रेज़ी जिल्द दूसरी (In woods of God Realization Vol. II.) | 2000 |
| (१३) | गणित शास्त्र पर राम का अंग्रेज़ी लेख (Mathematics and How to excel in it) | १००० |
| | जोड़ | ३०७५० |

नोट—ग्रन्थावली भाग १२ वां जो गत वर्ष से प्रेस में है। २०००

जोड़ ३२७५०

इस से अतिरिक्त लगभग १०००) रु० के अन्य उपयोगी वेदान्त ग्रन्थ बिक्री के लिये खरीदे गये।

वर्ष के अन्त में उक्त पुस्तकों में से लगभग २१०००) रु० की पुस्तकें लीग के स्टाक में बची हैं, जिन की संक्षिप्त लिस्ट परिशिष्ट (ग) में दी गई है।

उपरोक्त बातों से एवं आय-व्यय का चिट्ठा देखने से आप को पूरा पता लग जायगा कि लीग की वर्तमान दशा सर्व प्रकार संतोषप्रद है। यह सब परिणाम राम भक्तों की अटूट सहायता और निरन्तर हार्दिक प्रेम ही का फल है। परन्तु मुझे यहां अत्यन्त शोक के साथ एक दुःख भरी घटना को भी स्पष्ट करना पड़ता है, और वह यह कि जहां राम भक्तों ने इस लीग रूपी पौदे को अपने तन, मन, धन से सींच कर हरा भरा और फलदार किया है, वहां छिन्दवाड़ा (सी. पी.) के एक वकील बाबू [illegible] साहिब अपने तुच्छ स्वार्थ से उत्तेजित होकर इस नन्हे पौदे को अपनी वकालत (निकृष्ट नीति युक्त क़ानून) की नाव से कुचलाने व हानि पहुंचाने के पीछे तुले बैठे हैं। कहां तो दिल्ली के स्वर्गवासी लाला अमीरचन्द तथा उन के उत्तराधिकारी ला० [illegible] और मद्रास के प्रसिद्ध श्रीयुत गणेश ऐंड को. (Messers Ganesh & Co. Madras) कि जो श्रीमान् स्वामी नारायण जी की आज्ञा और सहायता से राम के अंग्रेज़ी वर्क्स कई वर्षों से प्रकाशित कर रहे थे, पर राम भक्तों द्वारा लीग की स्थापना होने की सूचना पाते ही उस प्रकाशन के कार्य भार को लीग के पास सौंप कर स्वयं इस के सदस्य होकर इस की रक्षा और [illegible] को अपने तन, मन, धन से कर रहे हैं; और कहां वह अपने आप को राम भक्त कहने वाले छिन्दवाड़ा

के वकील साहिब ( ला० [illegible] ) कि जिन्होंने न उक्त सज्जनों के समान ही अभी तक कोई राम का ग्रन्थ या व्याख्यान प्रकाशित किया था, और न अपने ही नियम अनुसार अपना कोई हिन्दी अनुवाद श्रीमान् स्वामी नारायण जी से पास करवा कर उस के प्रकाशन की तैयारी की भी थी, वरन् जो बिना स्वामी जी की आज्ञा व सम्मति के, अपने आप राम भक्तों से पब्लिक की अपील द्वारा कुछ धन एकत्र करके, अपने मनमानी अनुवाद को प्रकाशित करके, अपनी मनमानी कीमत पर बेचने के लिये उतर आये थे। और इस निकृष्ट चेष्टा से जब यह रोके गये तो लीग तथा स्वामी जी महाराज पर इन्होंने झट नालिश कर दी, जो एक वर्ष की लीग मांग के बाद छोटी अदालत ( Sub Judge's Court ) से तो गत मास अगस्त १६२१ को रद्द हो गई और लीग का खर्चा भी उन के सिर पड़ा। पर अब यह प्यारे बड़ी अदालत के द्वार पर गये हैं जिस का अभी कुछ निर्णय नहीं हुआ है। लीग के लगभग ८००) रु० अब तक इस मुकद्दमे में लग चुके हैं। आगे देखें, क्या परिणाम होता है। यह भी सुना जारहा है कि अपनी इस कार्यवाही पर यह साहिब प्रसन्न हुए डींगें भी हांकते रहते हैं। भगवान् की इस माया को और इनकी इस राम भक्ति को देखकर हम लोग इनसे क्या कहें। हां, राम भगवान् से ही हमारी प्रार्थना है कि इस प्यारे को वे शीघ्र सुमति दें जिससे जैसे यह अपने को राम भक्त केवल कहते या लिखते हैं, वैसे ही चित्त से भी दृढ़ समझते हुए पक्के राम भक्त हो-जायें, और तुच्छ स्वार्थ का पल्ला छोड़ कर धर्म और स्वार्थ त्याग के मार्ग पर चलते हुए अपना और अपने द्वारा दूसरों का कल्याण करें।

इतने थोड़े से काल में उक्त बाधा (घटना) तथा कागज और प्रेस आदि की अनेक [illegible] के होते हुए भी जो [illegible] सफलता हमें प्राप्त हुई है उस सबका श्रेयस तो वास्तव में राम भगवान् को है, हाँ धन्यवाद के पात्र तो सब सज्जन वे राम प्रेमी भी हैं कि जिन्होंने अपने शुद्ध संकल्प से इस संस्था की नींव डालकर इसकी तन मन धन से सहायता की। और मुझे पूर्णाशा है कि लीग इन राम प्रेमियों के निरन्तर उत्साह और पुरुषार्थ से दिन दुगनी और रात चौगुनी उन्नति करेगी।

इसमें संदेह नहीं कि मेरा निवास स्थान फैज़ाबाद होने के कारण मैं पूरी तरह लीग की सेवा नहीं करसका, और मेरी अनुपस्थिति में श्रीमान् नारायण स्वामी जी तथा मैनेजर लाला [illegible] जी ही सारा काम करते रहे हैं, इस लिये मैं उनका बड़ा कृतज्ञ हूँ। किन्तु इतना ही क्या यदि मैं यों कहूं कि लीग की उन्नति एवं हरी भरी होने का एक मात्र श्रेय इन्हीं स्वामी जी को है तो अतिशुक्ति न होगी। पांच छै हज़ार रुपया की मूल्य की पुस्तकें लीग को भेंट करके अपना तन मन धन इसी लीग के अर्पण कर रक्खा है; और पब्लिक कामों से जो कुछ भी समय मिलता है, सारा का सारा लीग को देते हैं। इस प्रकार न केवल मौखिक रूप से किन्तु प्रत्यक्ष [illegible] रूप से निष्काम कर्म का उपदेश करते हैं। संक्षेप में मानो श्रीमान् स्वामी जी ने इस गोवर्धन रूपी लीग को अपनी उंगली पर उठा लिया है, और जैसे कृष्ण भगवान् अपने सखाओं से कहते हैं कि भैया! अपनी २ [illegible] (लाठियों) का सहारा दिये रहना, उसी प्रकार स्वामी जी का सब राम भक्तों से भी कहना है कि

अपने २ उत्साह एवं पुरुषार्थ से इसी लीग के कार्य में तन मन धन से सहायता देते रहिये। सम्प्रति हमारा भी यही कर्त्तव्य है कि यथाशक्ति इस कार्य को सफल बनाने का उद्योग करें, जिससे हमारे सब के सम्मिलित उद्योग से राम की अमृतवाणी घर घर २ तक पहुँच जाय।

लीग के सब पदाधिकारियों को धन्यवाद दिये बिना मेरा अन्तःकरण रिपोर्ट को समाप्त करने की आज्ञा नहीं देता, कि जिनके परिश्रम व उत्साह से लीग नियमित रूप से स्थापित होकर हरी भरी हुई है। ईश्वर परमात्मा इस धर्म-कार्य की वृद्धि में इन प्यारों को उत्साह और बल दिन प्रति दिन अधिक प्रदान करते रहें।

अन्त में मैं लीग की ओर से उन सब महानुभावों को धन्यवाद देता हूँ कि जिन्होंने इस से पहिले श्रीराम भगवान् वा स्वामी नारायण जी से प्रेरित होकर वा आज्ञा पाकर राम के उद्देश्यानुसार उनके कुछ व्याख्यानों का प्रकाशन करके जनता तक पहुँचाया और राम के काम में हाथ बटाया। इसी प्रकार साधारण धर्म के सञ्चालक लोग भी, जो राम के बताये हुए व्यावहारिक वेदान्त व उद्देश्यों के अनुकूल प्रचार और व्यवहार कर रहे हैं, हमारे हार्दिक धन्यवाद के योग्य हैं। ईश्वर करे, राम के उद्देश्यानुकूल प्रचलित सब सभायें, समाजें व संस्थायें परस्पर मिलाप और सहानुभूति के धागे से जकड़ कर एक भारी सङ्गठित शक्ति से इस धर्म कार्य को दत्तचित्त होकर पूर्ण करें, और राम भगवान् की कृपा की शुभ छाया इन सब पर बनी रहे।

तथास्तु, सुरजनलाल पाण्डे,

मन्त्री, श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ।

तारीख ३१—१०—२१ ई०।

# परिशिष्ट (क)

## संरक्षक।

(१) श्रीयुत् लाला [illegible] रईस,
आनररी मजिस्ट्रेट, फ़ैज़ाबाद।

(२) श्रीयुत् सरदार [illegible] सिंह जी रईस और
ठेकेदार, [illegible] का तालाब, लखनऊ।

(३) श्रीयुत् लाला [illegible] जी. बी. ए.
सेकण्ड मास्टर, अमीनाबाद हाई स्कूल, लखनऊ।

---

## सम्मानित संरक्षक।

(१) श्री १०८ आर. एस. नारायण स्वामी जी महाराज।

## सदस्य।

(१) श्रीयुत् बैनी प्रसाद जी, एम. ए. एल. टी.
हेडमास्टर, अमीनाबाद हाईस्कूल, लखनऊ।

(२) श्रीयुत् ब्रह्मानन्द जी अग्रवाल।
डाकघर घनौर (रियासत पटियाला)।

(३) श्रीयुत् विद्यानन्द जी श्रीवास्तव।
नं० २५ मारवाड़ी गली, लखनऊ।

(४) श्रीयुत् सुरजन लाल जी पाण्डे।
मन्त्री सनातन धर्मसभा, फ़ैज़ाबाद।

(५) श्रीयुत् रायबहादुर सालिग्राम जी रईस।
ठेकेदार, [illegible] का तालाब, लखनऊ।

( ६ ) श्री १०८ स्वामी [illegible] जी महाराज।
हृषीकेश (ज़िला देहरादून)।

( ७ ) श्रीयुत् [illegible] जी, मैनेजिंग [illegible]।
श्री गणेश एण्ड को., पब्लिशर्स, मद्रास।

( ८ ) श्रीयुत् [illegible] जी, मार्फ़त एस. चन्द ब्रादर्स।
[illegible] चान्दनी चौक, देहली।

( ९ ) श्रीयुत् साहु ब्रजपाल सरन, बी. ए. रईस।
[illegible] मजिस्ट्रेट, ठाकुर द्वारा (ज़िला [illegible])।

(१०) श्रीयुत् हृदय नारायण जी, ठेकेदार।
नं० १३७ [illegible], कानपुर।

(११) श्रीयुत् विशेश्वर नाथ जी मार्फ़त ला० [illegible]
[illegible] रईस, बैंकर, [illegible]
कश्मीरी दरवाज़ा, देहली।

सम्मानित सदस्य।

( १ ) श्रीयुत् स्वामी स्वयं ज्योति जी।

( २ ) श्रीयुत् पं० [illegible] जी मैथानी।
सिविल [illegible] १० हिवट रोड, लखनऊ।

( ३ ) श्रीयुत् दीनदयाल जी, बी. ए.
डाकघर सियाबरी (ज़िला झांसी)।

[illegible]

( १ ) श्रीयुत् अरकाट जानकीराम [illegible], पेन्शनर।
नं० [illegible] [illegible] वेपरी, मद्रास।

( २ ) श्रीयुत् वृन्दावन जी [illegible]।
डाकघर [illegible] (ज़िला झांसी)।

( ३ ) श्रीयुत् महादेव प्रसाद भटनागर ।
मुहल्ला [illegible], लखनऊ ।

( ४ ) श्रीयुत् [illegible] श्रीवास्तव ।
असिस्टण्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट माल, माण्डला (सी. पी.) ।

( ५ ) श्रीयुत् महादेव प्रसाद श्रीवास्तव ।
नं० २५ मारवाड़ी गली, लखनऊ ।

( ६ ) श्रीयुत् रघुनाथ दामोदर ऋषि, वकील ।
जूना [illegible], इन्दौर (सी. आई.) ।

( ७ ) श्रीयुत् [illegible] विनायक क्षीर सागर ।
मुन्सिफ, हाईकोर्ट बिल्डिङ्ग, इन्दौर (सी. आई.) ।

( ८ ) श्रीयुत् [illegible], कोटली ।
[illegible] रियासत जम्मू ।

( ९ ) श्रीयुत् मदन मोहन गोस्वामी, ए. आई. एम. एम.
माइनिंग इञ्जीनीयर रियासत पटियाला ।

(१०) श्रीयुत् मोतीलाल गर्ग जैन,
मार्फत श्रीयुत त्रिलोक चन्द राय जैन, देहली ।

(११) श्रीयुत् पं० [illegible] शर्मा, हवेली पं० कबूलसिंह ।
रियासत अल्वर ।

# परिशिष्ट ( ख )

१ [illegible] श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, मिती कार्तिक कृष्ण १५ सं० १९७६ से कार्तिक शुक्ल १ सं० १९७८ तदनुसार २३ अक्टूबर सन् १९१९ से [illegible] अक्टूबर सन् १९२१ तक अर्थात् पूरे दो वर्ष का ।

# चिट्ठा

**आय**

[illegible] श्री [illegible] खाता

[illegible] श्री मनुष्य दान खाता

[illegible] श्री बिक्री पुस्तक खाता

[illegible]

१००० ) श्री उधार खाता

जोड़ [illegible]

**व्यय**

[illegible] श्री डाक खर्च खाता

[illegible] श्री व्याज खाता

[illegible] श्री मकान किराया खाता

[illegible]

[illegible] श्री [illegible] खर्च खाता

[illegible] श्री कागज खरीद खाता

[illegible] श्री [illegible] खर्च खाता

[illegible] श्री [illegible] खर्च खाता

(जो गत वर्ष की रकमों द्वारा हुआ)

[illegible] श्री [illegible] खाता

[illegible] श्री [illegible] खर्च खाता

[illegible] श्री [illegible] खाता

[illegible] श्री [illegible] खाता

[illegible] श्री [illegible] खाता

[illegible] श्री विज्ञापन खर्च खाता

[illegible] श्री [illegible] खर्च खाता

[illegible] श्री पुस्तक [illegible] खाता

[illegible] श्रीराम पुस्तकालय खाता

[illegible] श्री पुस्तक उधार खाता

[illegible] श्री छपाई खर्च खाता

[illegible]

[illegible] श्री फुटकर खर्च खाता जिसमें लगभग १००) रुपया वह है जो स्वामी सत्य ज्योति के समय चोरी चला गया व जेब से गिर गया

[illegible] जोड़ खर्च ।

[illegible] श्री रोकड़ बाकी

---

## श्री ब्योरा रोकड़ बाकी ।

[illegible]

[illegible] पास कागज कम्पनी दिहली

[illegible] हाथ में रोकड़

जोड़ [illegible]

हस्ताक्षर बा० [illegible] खजांची ।

हस्ताक्षर बा० [illegible] मैनेजर ।

हस्ताक्षर [illegible] सभापति ।

# परिशिष्ट ( ग ) ।

## श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग के पुस्तक भंडार की सूची ।

| नं० | नाम पुस्तक | भाषा | किस्म संस्करण | दर | संख्या | मूल्य |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली भाग १ से लेकर ११ तक | हिन्दी | सादा | ॥) | १३६५५ | ६८२७॥) |
| २ | श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली भाग १ से लेकर ११ तक | हिन्दी | सजिल्द | ॥।) | ३१६१ | २३६३।) |
| ३ | [illegible] कर कावें | हिन्दी | सादा व सजिल्द | | ८५ | ६०।) |
| ४ | सम्पूर्ण रामवर्षा | ” | सजिल्द | २) | १८२ | ३६४) |
| ५ | श्री भगवद्गीता | ” | सादा | २) | १८१० | ३६२०) |
| ६ | श्री भगवद्गीता | ” | सजिल्द | ३) | १६० | ५००) |
| ७ | श्री [illegible] जीवन | ” | ” | ३) | २६ | ८०) |
| ८ | [illegible] Realization Vol. I | अंग्रेज़ी | ” | २) | १०० | २००) |
| ९ | Vol. II भाग २ | ” | बिना जिल्द | १॥) | १६१२ | २८२१) |
| १० | Vol. II भाग २ | ” | सजिल्द | २) | २६८ | ५३६) |
| ११ | Vol. III भाग ३ | ” | ” | २) | ३ | ६) |
| १२ | [illegible] | ” | ” | ॥।) | ६५२ | [illegible] |

कुल— [illegible]

# परिशिष्ट (ग)।

## श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग के पुस्तक भंडार की सूची।

| नं० | नाम पुस्तक | भाषा | [illegible] | दाम | तादाद | मूल्य |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | जोड़ गत पृष्ठ का | | कुल | जोड़ | ११००० | १८२५६) |
| १३ | राम वर्षा उर्दू भाग १ | उर्दू | सजिल्द | ।॥) | ११५ | ४६।।) |
| १४ | राम वर्षा उर्दू भाग २ | ,, | सादा | ॥) | ८ | ४) |
| १५ | [illegible] का खुलासा [illegible] | ,, | ,, | १) | १३ | १३) |
| १६ | राम पत्र उर्दू | ,, | ,, | ॥) | १०४ | ५२) |
| १७ | ,, | ,, | सजिल्द | ॥।) | ५१ | ३८।) |
| १८ | वेदानुवचन उर्दू | ,, | सादा | १) | १८३ | १८३) |
| १९ | ,, | | सजिल्द | १॥) | ८८ | १३२) |
| २० | राम के चित्र | ,, | ,, | –) | ११०१ | ६८॥।–) |
| २१ | राम के बड़े फ़ोटो | ,, | ,, | ॥) | ७५ | ३७॥) |
| २२ | [illegible] पुस्तकें | अंग्रेज़ी | ... | ... | ४७६ | २८८।=) |
| २३ | कुड़कर रोम काग़ज़ व थान कपड़ा इत्यादि | ... | ... | ... | ... | ४४४॥=) |
| २४ | [illegible] | ... | ... | ... | ... | ३१५) |

कुल जोड़—[illegible] ३३३६१॥=)

# रामादर्शः

( जो राम से अमेरिका में स्थापन होने वाली वेदान्त सभाओं के सम्मुख रक्खा गया )

---

( १ ) मनुष्य में ईश्वरत्व ( तत्त्वमऽसि ) ।

( २ ) समस्त संसार को उसके साथ एक दिल होना पड़ता है जो समस्त संसार के साथ अपनी एकता का अनुभव करता है ।

( ३ ) शरीर को उद्योग-युक्त और मन को शान्त और प्रेम मय रखने से ( अभी ) इसी जीवन में ही पाप और दुःख से छुटकारा मिल जाता है ।

( ४ ) सब के साथ अभेद (भावना) को प्रत्यक्ष अनुभव से हमें समता भरी साहस शीलता का जीवन लाभ होता है ।

( ५ ) संसार भर के धर्मग्रन्थों का अध्ययन हमें उसी भाव से करना चाहिये जिस से हम रसायन शास्त्र ( Chemistry ) का करते हैं जिस में हमारा निजी अनुभव ही अन्तिम प्रमाण होता है ।

राम ।

scene ). ( ९ ) भारतवर्ष की स्त्रियाँ ( Indian woman hood ). ( १० ) आर्य माता ( About wifehood ). (११) पत्र मंजूषा ।

<u>चौथा भागः</u>—( १ ) भूमिका ( Preface by Mr. Puran in Vol. I ). ( २ ). पाप; आत्मा से इसका सम्बन्ध (Sin—Its relation to the Atman or Real Self ). ( ३ ) पाप के पूर्व लक्षण और निदान ( Prognosis & Diagnosis of Sin ). ( ४ ) नकद धर्म. ( ५ ) विश्वास या ईमान. ( ६ ) पत्र मंजूषा ।

<u>पाँचवाँ भाग</u>.—( १ ) राम परिचय. ( २ ) अवतरण (A Brief of Introduction by the late Lala Amir Chand, Published in the fourth volume ). ( ३ ) सफलता की कुञ्जी (lecture on Secret of Success, delivered in Japan ). ( ४ ) सफलता का रहस्य (lecture on Secret of Succes, delivard in America ). ( ५ ) आत्म कृपा ।

<u>छठा भागः</u>—( १ ) प्रेरणा का स्वरूप ( Nature of Inspiration ). ( २ ) सब इच्छाओं की पूर्ति का मार्ग (The way to the fulfilment of all desires ). ( ३ ) कर्म. ( ४ ) पुरुषार्थ और प्रारब्ध. ( ५ ) स्वतंत्रता ।

<u>सातवाँ और आठवाँ भाग</u>:—राम वर्षा, प्रथम भाग (स्वामी राम कृत भजनों के नौ अध्याय) और दूसरा भाग ( जिसके केवल तीन अध्याय दर्ज हैं ) ।

द्वितीय वर्ग में ५०० पृष्ठ के निम्न लिखित चार भाग प्रकाशित हुये हैं जिन के सेट का मूल्य बिना जिल्द २) रु० और सजिल्द का ३) रु० है।

प्रत्येक फुटकर भाग का मूल्य बिना जिल्द ॥) व सजिल्द ॥=), डाकव्यय हर हालत में ग्राहक के जिम्मे है।

नवाँ भाग:—राम वर्षा दूसरा भाग।

दसवाँ भाग:—(१) हज़रत मूसा का डंडा (The Rod of Moses), (२) सुधार, (३) उन्नति का मार्ग या सेल्फ-कल्चर, (४) राम हिदायत (The Problem of India), (५) जातीय धर्म (The national Dharma)।

ग्यारहवाँ भाग:—(१) राम के जीवन पर विचार श्रीयुत पादरी सी० एफ० एण्ड्रयूज़ द्वारा, (२) विजयनी आध्यात्मिक शक्ति (The Spiritual power that wins) (३) लोगों को वेदान्त क्यों नहीं भाता (रिसाला अलिफ़ से—राम का हस्त लिखित उर्दू-लेख)।

बारहवाँ भाग:—(१) सुलह कि जंग? गंगा तरंग।

(रिसाला अलिफ़ से स्वामी राम का हस्तलिखित उर्दू लेख)

Printed by Pandit Ram Shanker Bajpai, at the Lucknow ... Printing Press, Lucknow, 1937.

ब्रह्मलीन श्री स्वामी रामतीर्थ जी के शिष्य श्रीमान् आर. एस. नारायण स्वामी द्वारा व्याख्या की हुई।

# श्री मद्भगवद्गीता।

प्रथम भागः—अध्याय ६, पृष्ठ संख्या ८३२।

(मूल्य — साधारण संस्करण २), विशेष संस्करण ३)

डाकव्यय अलग

अभ्युदय कहता हैः—"हम ने गीता की हिंदी में अनेक व्याख्यायें देखी हैं, परन्तु श्री नारायण स्वामी की व्याख्या के समान सुन्दर, सरल और विद्वतापूर्ण दूसरी व्याख्या के पढ़ने का सौभाग्य हमें नहीं प्राप्त हुआ है। स्वामी जी ने गीता की व्याख्या किसी साम्प्रदायिक सिद्धान्त की पुष्टि अथवा अपने मत की विशेषता प्रतिपादित करने की दृष्टि से नहीं की है। आप का एक मात्र उद्देश्य यही रहा है कि गीता में श्री कृष्ण भगवान् ने जो कुछ उपदेश दिया है उसके उत्कृष्ट भाव को पाठक समझ सकें।"

प्रेक्टिकल मेडीसन [देहली] का मत हैः—"अन्तिम व्याख्या ने जिसको अति विद्वान श्रीमान् बालगंगाधर तिलक ने गीता-रहस्य नाम से प्रकाशित किया है, हमारे चित्त में बड़ा प्रभाव डाला था, पर श्रीमान् आर० ऐस० नारायण स्वामी की गीता की व्याख्या ने इस स्थान को छीन लिया है। इस पुस्तक ने हमें और हमारे मित्रों को इतना मोहित कर लिया है कि हम ने उसे अपने नित्य प्रातः स्मरण की पाठ पुस्तकों में सम्मिलित कर लिया है।"

चित्रमयजगत पूना का मत हैः—"हिन्दी में गीता का संस्करण अपने ढंग का एक ही निकला है......अर्थात् स्वामी जी ने इसे कितने ही विशेषताओं से संयुक्त किया है। भूमिका, प्रस्तावना, गीता रहस्य, श्लोकानुक्रमणिका,

[illegible] आदि के बाद गीताका शब्दार्थ, अन्वयार्थ और व्याख्या तथा टिप्पणी लिखी गई है। इन सब अलंकारों के सिवाय स्वामी जी ने स्थान २ पर विविध महत्वपूर्ण फुट नोट देकर पुस्तक को सर्वांग सम्पन्न बना दिया है। साथ ही जहाँ मूल का [illegible] होता दिखाई दिया वहाँ [illegible] व्याख्या देकर वर्णन की शृंखला बद्ध कर दिया है। इसी प्रकार प्रत्येक अध्याय के अन्त में उसका सार देकर स्वामी जी ने इसे अलंकृत और बहुत सब के समझने योग्य बना दिया है [illegible] कोई बात नहीं जो इस व्याख्या में देखने को न मिलती हो। सारांश, साम्प्रदायिक भेद भावों से अलग रहते हुए स्वामी जी ने इस गीता को लिखकर देश का बड़ा उपकार किया है। हमारे पास वे शब्द ही नहीं कि जिनके द्वारा हम स्वामी जी को धन्यवाद दें……।

## लीग से मिलने वाली उर्दू पुस्तकें।

(१) वेदानुवचन—इसमें उपनिषदों के आधार पर वेदान्त के गहन विषय का वर्णन है। मूल्य बिना जिल्द १) सजिल्द १॥)

(२) कुल्लियात-ए-राम भाग १—इसमें स्वामी रामके उर्दू लेखों का संग्रह है। मूल्य बिना जिल्द १) सजिल्द १॥)

(३) राम पत्र—इस में स्वामी जी के वे पत्र हैं जो उन्होंने अपनी किशोरावस्था में अपने गुरु जी को भेजे थे। मूल्य बिना जिल्द ॥) और सजिल्द ॥।)

(४) राम वर्षा भाग १—इसमें स्वामी रामके अपने भजन तथा उसी आशय के दूसरों के भजन हैं। मूल्य सजिल्द ॥।)

(५) राम वर्षा भाग २—इसमें भजनों के साथ स्वामी जी की संक्षिप्त जीवनी भी है। मूल्य बिना जिल्द ॥) सजिल्द [illegible]

# The Complete Works of Swami Rama Tirtha

## ( In Woods of God-Realization. )

*( Each [illegible] Complete in itself )*

Vol. I Parts I-III With two [illegible], a preface by Mr. Puran, an introduction by Mr. C. F. Andrews, and twenty lectures delivered in Japan and America Pages [illegible] D. Octavo, Cloth Bound Rs. 2.

Vol. II Parts IV & V. Containing a Life-sketch, two portraits, [illegible] Lectures, delivered in America fourteen chapters of forest-talks and discourses held in the west, letters from the Himalayas, and several poems. Pages [illegible] Octavo. Cloth Bound Rs. 2,

Vol. III Part VI & VII. With two portraits, twenty chapters of lectures and informal-talks on Vedanta, ten [illegible] utterances on India the Mother-land and several letters. Pages [illegible] D. Octavo Cloth Bound Rs. 2

Mathematics; I[illegible] way to excel in it.

( With a photo and life sketch of Swami Rama ). [illegible] bound, Annas twelve.

This article was written for the students by Swami Rama Tirtha when he was a Joint Professor of Mathematics, Foreman Christian College, Lahore in 1896. It is now printed in a book form and to enhance the value of it & to make it more attractive and useful, a photo of Swami Rama as a Professor and his life-sketch are added to it in an arranged form, specially bringing out those points in Rama's [illegible] life as may serve to [illegible] guide many a [illegible] labouring under [illegible] and may make his [illegible] and [illegible]

( [illegible]—Postage [illegible] )

* ॐ *

# * निवेदन *

प्रिय पाठकों की सेवा में आज ग्रन्थावली का बारहवाँ भाग भेजते हुये चित्त से यही प्रार्थना बह रही है कि राम भगवान् दिन प्रति दिन अधिक बल हम सबों को दे कि जिस से लीग के उद्देश्यों और मन्तव्यों के पालन में हम पूर्ण सफलीभूत हों। अपनी प्रतिज्ञानुसार यह भाग पाठकों की सेवा में यद्यपि मास नवम्बर के आरम्भ में पहुँच जाना चाहिये था; पर अपना प्रेस न होने के कारण एक मास का बिलम्ब अवश्य हो गया। परन्तु गतवर्ष के बिलम्ब को देखा जाय तो उसके सामने यह कुछ भी बिलम्ब नहीं, तथापि दिन प्रति दिन प्रबन्ध अधिक होते जाने के कारण हमें पूर्ण आशा है कि अब इतना थोड़ा सा बिलम्ब भी आगे को नहीं होगा। और इसी लिये प्रत्येक भाग का समय बाँध दिया गया है। आगामी वर्ष में (अर्थात् दीपमालिका संवत् १९७९ तक) लगभग १००० पृष्ठ स्थाई ग्राहकों के पास छः भागों में पहुँचाने का लीग ने निश्चय कर लिया है। और प्रत्येक भाग दो २ मास के बाद ग्राहकों की सेवा में पहुँचेगा। परन्तु प्रथम भाग में किञ्चित् बिलम्ब इतना अवश्य होगा कि मास जनवरी सन १९२२ के आरम्भ के स्थान पर उसके अन्त में पहुँच सकेगा। यदि मास जनवरी के अन्त तक भी किसी ग्राहक के पास भाग न पहुँचे तो वह कृपया अपने ग्राहक-नम्बर व पते को स्पष्ट लिखकर अपनी शिकायत भेजें।

बहुत दिनों से कई एक राम-प्रेमी स्वामी राम के विस्तृत जीवन चरित्र जानने की लालसा प्रकट कर रहे हैं, क्योंकि राम की जीवनी की सहायता से वे राम को सहित उसके आदर्श के ठीक २ समझना चाहते हैं। इसलिये आगामी वर्ष के अङ्कों में राम की जीवनी भी प्रकाशित होगी। आशा है इससे पाठकगण का विशेष लाभ होगा।

आगामी वर्ष के प्रत्येक भाग में बिजाय १२८ पृष्ठ के कम से कम १६० पृष्ठ होंगे, जिससे छे भागों में ही लगभग १००० पृष्ठ आजायँगे। पर इसबार इस विचार को सन्मुख रखकर कि राम के अमूल्य उपदेश-रत्न हिन्दी जनता में सस्ते से सस्ते दामों पर पहुँच सकें ग्रन्थावली के भागों को दो संस्करणों में निकालना निश्चय किया गया है। एक साधारण संस्करण और दूसरा विशेष। साधारण संस्करण में काग़ज़ सामान्य और जिल्द कागज़ी होगी। विशेषसंस्करण में काग़ज़ बढ़िया और जिल्द कपड़े की होगी।

वार्षिक शुल्क साधारण संस्करण का ३) रु० पेशगी।
और ,, विशेष संस्करणका ६) रु० पेशगी होगा।
प्रत्येक भाग रजिस्टर्ड पैकट द्वारा मँगाने वाले प्यारों को ≈) प्रति भाग के हिसाब से ॥।) और भेजने होंगे। फुटकर दाम प्रति भाग का ॥≈) और १।) होगा।

अन्त में अपने पाठकों से यही निवेदन है कि वे हमारे इस धर्म-कार्य में तन-मन-धन से हाथ बटायँ, और जो वार्षिक रिपोर्ट इस भाग में दी गई है उसे एक बार अवश्य दत्त चित्त से पढ़ें। ईश्वर करे हमारी यह थोड़ी सी सेवा राम प्यारों को स्वीकार हो। मंत्री

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग।

श्री स्वामी रामतीर्थ ।



FRANCISES (CAL) U.S.A.

DECEMBER 1902



# स्वामी रामतीर्थ ।

## सुलह कि जंग ? गंगा-तरंग ।



( अलिफ जिल्द अव्वल नं० ७ ता० १२ )

(३) अब हम अपने प्यारे की तीसरी आपत्ति की ओर (जो पूर्व भाग ग्यारह के पृष्ठ ८९ में की गई है) आते हैं कि "डारविन के विकासवाद के मतानुसार शांति और सुलह अयुक्त वा अविधेय है, और उन्नति के लिये लाठी के बल से भैंस ले जाना आवश्यक है। समस्त प्राणिवर्ग और वनस्पति-वर्ग आदि में भी यही नियम प्रचलित है। जो नियम कि सृष्टि के अन्य विभागों में प्रचलित हो, उससे मनुष्य का भागना अनुचित है।"

**राम**ः—इवोल्यूशन ( विकास-सिद्धांत ) के नियम जो डाराविन और उसके अनुयायी विज्ञानविदों ने बताए हैं, यदि वे पशु आदि के लिये सच भी हों, तो भी ऐ समस्त सृष्टि में श्रेष्ठ, प्राणि ! तुझे कदापि-कदापि शोभित नहीं है कि तू वन्य पशुओं की सेवा में घुटने टेक कर पाठ पढ़े और उनसे यह उपदेश सीखे कि स्वार्थ-परता से हुमसकर [ उत्तेजित वा संतप्त होकर] दुर्बलों का रक्त पीना ही प्रकृति के नियमों का अनुसरण है, तीसमार खाँ बनकर सांसारिक मनोरथ रूपी शव का आहार करना भलाई है, और मुरदार खाते खाते आँखें मीचना ही ईश्वर-पूजा वा भगवत्-आराधन है।

प्यारे ! तुम निर्वाचित हो चुके हो ( you have been selected) । तुम्हारे लिये लंगूर और चीते का युग (Epoch) बीत चुका है। मनुष्य-भक्षण वाले नाखुनों, दांतों और सींगों का राज्य भी बीत चुका है। फाड़ खाने या दुम हिलाने का समय नहीं रहा। तुम अब दकयानूस ( उपद्रवी शासक की तरह सूर्य, चंद्रमा और सब नक्षत्रों को इस छोटे से शरीर-जगत् के गिर्द मत घुमाओ। स्वार्थपरता से बाज़ आओ ( विरत हो ), बरन् इस शरीर-भूमि को परमार्थ के सूय पर न्योछावर कर दो, वार के फेंक दो।

यदि उन्नति नर-भक्षण ही पर अवलंबित है, तो मनुष्यता ऐसी उन्नति से बाज़ आई। हरबर्ट स्पेंसर जैसे विश्व-विदित, विकासवाद के पक्षपाती ने भी अपने Data of Ethics ( आचार-शास्त्र की सामग्री ) में स्वीकार किया है कि "यद्यपि बुद्धिहीन सृष्टि के लिये स्वार्थपरता और युद्ध-विग्रह ही क्रमशः उन्नति का कारण रहेंगे, किंतु मनुष्य के लिये सहानुभूति, शुभेच्छा और स्वार्थ-त्याग

ढिंढोरा है—“He is your Self—अपने बराबर ता क्या, वह तुम ही हो।”

मन हमानम, मन हमानम, मन हमाँ।
हर कुजा चश्मत फितद जुज़ मन मदाँ॥

अर्थ—मैं वही हूँ, मैं वही हूँ, मैं वही हूँ। जिस जगह तेरी आँख पड़े, उसको तू मेरे अतिरिक्त मत जान।

भगवान् बुद्ध ने एक राजा को हरिन पकड़े हुए देखा इधर निर्दोष मृगशावक की भयातुर सूरत (आकृति), उधर चमकता हुआ अरक्षित फर्सा दिखाई पड़ने की देर थी कि भगवान् बुद्ध मारे सच्ची पीड़ा के राजा के सम्मुख चित गिर पड़े, और मर्मस्पर्शी द्रवीभूत चित्त के साथ राजा से प्रार्थना की कि “आप निस्संदेह मेरा शरीर फर्से के अर्पण कर दीजिए, किंतु इस मदभरी आँखों वाले मृग को पीड़ा पहुँचाने से हट जाइए। मुझे अपने शरीर से प्रीति नहीं, किंतु इस मृगशावक बिचारे को जीवन बहुत प्यारा है।”

पाठक! आप विचार कर सकते हैं, ऐसे अवसर पर राजा साहब का पाषाण-हृदय अहल्या बनकर कहाँ उड़ गया होगा। इन अंतर्दाहवाले वाक्यों ने राजा के बर्बरता पूर्ण वा भयानक संकल्प पर किस प्रलय-काल का कुल्हाड़ा चला दिया होगा। बुध के आत्म-समर्पण ने राजा के हिंसक हृदय को कितना अधिक विदीर्ण किया होगा! हज़ारों वर्ष बीत गए कि वह बुध जो हरिन के हेतु प्राण देने को तत्पर था, आज तक करोड़ों मनुष्यों पर राज कर रहा है। वह ईसा जिसका कथन है कि ‘एक गाल पर कोई तमाचा मारे तो दूसरा गाल उसके आगे करदो” वह ईसा देश के

देश अधिकार में ले आया। क्या हिंदुओं को विकास सिद्धांत (वा परिणाम बाद) का ज्ञान न था?

प्रोफ़ेसर हक्सले ने स्वीकार किया है—

"To say nothing of Indian Sages, to whom Evolution was familiar notion, ages before Paul of Tarsus was born."

अर्थ—भारत वर्ष के ऋषियों का तो क्या कहना है जो टार्सस के निवासी पाल के उत्पन्न होने से बहुत काल पूर्व विकास और अवतरण के सिद्धातों से भली भांति परिचित थे।

श्री रामानुजाचार्य ने अत्यंत योग्यता पूर्वक इस सिद्धांत को सिद्ध किया है। सांख्य के कर्त्ता ने भी सांसारिक विकास को सविवरण दिखाया है—

निमित्तं अप्रयोजकं प्रकृतीनां। वरन् भेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्॥

(योगदर्शन)

अर्थ—जीवात्मा में प्रत्येक शक्ति पहले ही से विद्यमान है। एक चींटी में वह समस्त शक्तियाँ निहित हैं, जो ब्रह्मा में स्पष्ट हैं। नदी अपने वेग से सब स्थान पर एकही जैसी बहती जा रही है. जो कृषक अपने खेतवाला बंद हटाएगा उसके खेत में पानी तत्काल भर आयगा।

भारतवर्ष में यह अंतर्शक्ति (नदी) विकास-बाद का कारण स्वीकार की गई है। हिंदू लोग विकासबाद से भली भाँति परिचित चले आये हैं, किंतु उन्होंने लड़ाई-झगड़े को विकासवाद का कारण कहीं नहीं निर्दिष्ट किया है।

श्री रामानुजाचार्य जी के मतानुसार छोटे दर्जों में आत्मा एक (contracted spring) संकुचित अर्थात् घुटे हुए तार के समान है और फैलना चाहता है। विस्तार

के लिये एकत्रित बल से विकास का होना आवश्यक है। जो कारण इसके संकोच ( contraction ) का हेतु हैं, वे पाप हैं, और जो इसके विकास में सहायक हैं, वे पुण्य वा शुभकर्म हैं। अब यह आंतरिक विकास-शक्ति इवोल्यूशन ( परिणाम ) का कारण है। अविद्या के कारण इस शक्ति का जहां विरोध हुआ, झगड़ा-बखेड़ा ( struggle ) और दुःख ( pain ) प्रकट हुए। जैसे गंगा की तीक्षण धारा को चट्टान या पत्थर जहां रोकने वाले हुए, वहां कोलाहल मचा और तूफ़ान आया। ( गोहना झील वाली घटना कदाचित् अभी स्मरण होगी )।

खनिज वर्ग, बनस्पति वर्ग और प्राणिवर्ग में मनुष्यों की अपेक्षा अविद्या जन्म से है, इस लिये जड़ वर्ग, बनस्पति वर्ग, और प्राणिवर्ग को आभ्यन्तर विकास-शक्ति के रुकावट का पेश आना आवश्यक है, और युद्ध-विग्रह अथवा लड़ाई-झगड़े का होना भी अति आवश्यक है। किंतु यह लड़ाई-झगड़ा उनके विकास का यथार्थ कारण नहीं, बरन् एक अंश में प्रतिबंधक है। जैसे जहां कहीं गाड़ी की गति आरंभ होगी, रगड़ का व्यवहार आवश्यक होगा। किंतु यह रगड़ गति की सहायक नहीं।

आर्य लोगों के मतानुसार सृष्टि के अन्य वर्गों की अपेक्षा मनुष्य आजन्म अविद्या से बहुत कुछ मुक्त है, और इसी लिये अपनी करनी और रहनी का उत्तरदाता माना जाता है। मनुष्य-शरीर में आभ्यन्तर विकाश-शक्ति का निरोध उसी हद तक होगा जहां तक भीतर पाशविक जड़ता ( अविद्या ) की गंध शेष हैं; और लड़ाई-झगड़े का कारण तो होगी अविद्या, किंतु उन्नति और विकास का

कारण अंतर्शक्ति । अतः यह परिणाम निकालना कि "उन्नति और विकास का कारण युद्ध और लड़ाई है" नितांत मिथ्या है।

इतिहास इस बातकी साक्षी देता है कि 'भेड़ों और भेड़ियों के युद्ध ( The sheep among the wolves ) में, जो शताब्दियों तक ख़त्म नहीं हुआ करता, अंततः विजय जब होगी तो शांतिप्रिय और प्राण न्योछावर करने वाली भेड़ों की होगी। देख लोः—भेड़ियों की जाति तो नष्ट होती जा रही है, और भेड़ों की कितनी अधिकता है।

एक वह दिन था कि यूनानियों के दल-बादल लश्करों की दौड़-धूप से भूमि कांपती थी, आज फैलकूस और सिकंदर के देश की कहानी बाकी रह गई है। एक दिन वह था कि रूम की राजधानी की ध्वजा भूमंडल के लगभग प्रत्येक स्थान पर लहराती थी, आज क़ैसरों ( Caesors ) के सिंहासनों पर मकड़ियां जाले तन रही हैं। एक वह दिन था कि आफरासियाब, फरेंदू और कैकौस की असंख्य सेनाएं और घोड़ों की टापों से सुविस्तृत अरण्यो में " ज़िमीं शश शुद व आस्माँ गश्त हश्त" (पृथिवी छे हो गई और आकाश आठवां हो गया) का मामला हो रहा था। आज वही मुट्ठी भर रुस्तमजी, सुहरावजी आदि फ़ारस से अलग होकर भारतवर्ष में काल व्यतीत कर रहे हैं । मुग़लों का चमकता चाँद भी दो दिन की चमक दमक दिखाकर बिलकुल फीका पड़ गया, और कई बलसंपन्न साम्राज्य सागर की लहरों की भाँति उत्पन्न होकर मिट गए।

पर्दादारी मी कुनद बर कसरे-कैसर अन्व बूल।

बूम नौबत मी ज़नद बर गुंबदे-अफरासियाब ॥

अर्थ—रूम के बादशाह के महल पर मकड़ी पर्दादारी करती है ( अर्थात् उसे जाला तनकर ढाप रही है ), और उल्लू अफ़रासियाव के गुंबद पर अब नौबत बजा रहा है [ अर्थात् अब वहां मनुष्य के स्थान पर उल्लू बोल रहा है ) ।

किंतु वह जाति जो यूनानियों के प्रकाश ( ज्ञान ) का स्रोत थी; वह जो उस समय उपस्थित थी जब रूमी साम्राज्य की नीव भी नहीं पड़ी थी, और जब वर्तमान समय की योरपियन शक्तियों [ राष्ट्रों ] के पिता-पितामह जर्मनी के जंगलों में नग्न फिरते थे; वह जाति जिसके आदि का पता लगाने में इतिहास की आँखें फटती हैं; वह जाति अपने देश में आज तक बीस करोड़ मौजूद हैं और बढ़ती-फैलती रहेगी । क्यों?—क्योंकि उनका प्रत्येक वाक्य "ओम् आनंद" से आरंभ होता है, और "शांति ! शांति !! शांति !!!" पर खत्म होता है; क्योंकि युद्ध विग्रह के स्थान पर वैराग्य और त्याग उन का शस्त्र है; क्योंकि और देशों को बिजय करने के स्थान पर अपने आप को विजय करना उनका आदर्श है । ईश्वर का अनुग्रह इस जाति पर है और रहेगा। यही जाति है जो मुसलमानों को मस्जिदें बनाने के लिये चंदा देती है और ईसाइयों को गिरजे तैयार करने में सहायता देती है ।

संसार में प्रत्येक देश अपने एक कर्तव्य को लिये हुए है । भारत को ब्राह्मणपन (Priest of nature) की ड्यूटी मिली हुई है। किसी को सांसारिक तृष्णा ने व्याकुल किया है, किसी को भोगेच्छा ने विचलित किया है।

हिंदू तो वही है जो केवल राम पर प्राण-समर्पण करता है, ब्राह्मण वही है जो अपनी जिह्वा से यह गा रहा है—

हम नंगे उमर बिताएँगे, भारत पर वारे जाएँगे।
सूखे चने चबाएँगे, भाइयों को पार लगाएँगे॥
रूखी रोटी खाएँगे, मस्त पड़े रह जाएँगे।
गाली ताना खाएँगे, आनँद की झलक दिखाएँगे॥
सूलों पर नंगे जाएँगे, पर एकोब्रह्म लिखाएँगे।

+ + + +

लत खुर्दन अज़ तमन्नए-दौलत बराय चे।
ख्वारी कशीदन अज़ पए इज़्ज़त बराय चे ? ॥ १ ॥
गर्चे बदस्त बुखल ज़ मरदाँ बले बखील।
गर माले-खुद नदाद अदावत बराय चे ? २ ॥
नाली ज़ बे मुरव्वत्तिये-अहले-रोज़गार।
अम्मा बिगो उमेदे-मुरव्वत बराय चे ? ३ ॥
मतलब अगर गुज़श्तने-उमर अस्त दर खुशी।
बगुज़र ज़ा मतलब ईं हमा ज़हमत बराय चे ? ४ ॥
बगुज़र अज़ाँ दुकाँ कि ख़रीदार नेस्ती।
बेहूदा जंग बरसरे-क़ीमत बराय चे ? ५ ॥

अर्थ—(१) धन की चाह में संसार की लातें खाना, किस लिये? और मान के लिये अपमान सहना किस लिये?

(२) यद्यपि मनुष्यों के लिये कंजूसी बुरी है, किंतु कंजूस ने यदि अपना धन नहीं दिया, तो उससे शत्रुता किस लिये हो ?।

(३) तू संसारी लोगों की बेमुरव्वती की शिकायत करता है, किंतु बता कि मुरव्वत [ शिष्टाचार ] की आशा तुझे उनसे किस लिये है ?

(४) यदि तेरा मतलब आनंद में आयु बिताने का है, तो इस मतलब से दूर हट, इन समस्त कष्टों को तू किस लिये सहता है ?।

(५) उस दूकान से भी अलग हट जिसका कि ख़रीदार तू नहीं है, मूल्य के ऊपर व्यर्थ लड़ाई-दंगा से क्या लाभ ?

योरपवालों को पर्वत श्रेणियों और पत्थरों की बनावट जाँचने दो, भारतवासी तो वहां शिवशंकर और शक्ति ही देखेंगे। कोई नदियों की लम्बाई-चौड़ाई और मोहाना पड़ा ढूँढे, भारतवासी तो नदी की प्राण-आत्मा [ गंगा ] ही से बातें करेंगे। किसी के लिये वायु और अग्नि तत्त्व हों, किसी के लिये मिश्रित सही, हिंदुओं को तो परमदेव ही सूझता है। जिसका जी चाहे फूलों को काट-काटकर पंखड़ियाँ पड़ा गिने [Botany], जिसका जी चाहे उनसे स्त्रियों की सेज सजाए, हिंदू तो उन्हें पूजा के लिये प्रिय समझते हैं। उनको तो पीपल, तुलसी, गाय और सांप में भी देवता ही दर्शन देता है। मछली और कछुआ भी अवतार [परमेश्वर] हैं। कुशा और भोजपत्र भी पवित्र हैं। कौन वस्तु है जो आनंद कंद की दृश्य नहीं है। सच्चा हिंदू तो नारायण ही में रहता सहता और निवास-प्रतिवास करता है। योरुप के ज्योतिषियों ! आपको तारों का लोक दिखाई देना मुबारक हो; भारतवासी तो वहां ज्योतियों की ज्योति [ The light of lights ] को देखेंगे—

चन्न चढ्या कुल आलम देखे, मैं देखा आबरू मही दा
हुन किस थों आप छिपाई दा ?

माया रूपी डुपट्टे पर वारे न्यारे जाते हो। इसी पर बस मत करो। यह माया का दुपट्टा उठाकर सुन्दर कपोल

प्यारे श्याम सुन्दर पर मन और आँखों को भौंरा बना दो।

मरा दर दिल बग़ैर अज़ दोस्त चीज़े दर नमी गुंजद।
बख़िल्वत ख़ानए-सुल्ताँ कसे दीगर नमी गुंजद॥ १
दरूने-क़सरे-दिल दारम, यके शाहे कि गर गाहे।
ज़ दिल बेरूँ ज़नद ख़ेमा, ब बहरो-बर नमी गुंज़द॥ २

अर्थ—मेरे हृदय में प्रीतम के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं समाती है। बादशाह के एकांत-स्थान में कोई दूसरा मनुष्य नहीं जा सकता ॥ १ ॥ हृदय-मंदिर में मैं एक ऐसा बादशाह रखता हूँ (अर्थात् मेरे हृदय में एक ऐसा बादशाह है) कि यदि वह कभी हृदय से बाहर ख़ेमे गाड़ दे (अर्थात् यदि वह कभी हृदय से बाहर आ जाय), तो जल थल में न समा सके॥

पाश्चात्य देश निवासियों! तुम मानवी शरीर के रक्त और हड्डियों से हाथ बहुत भर चुके (Anatomy)। आओ अब इस शरीर में उस महान ज्योतिस्स्वरूप का दर्शन करना सीखो॥

हंसः शुचिषद्वसुरंतरिक्षसद्धोता बेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसत् वयोम सदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतंबृहत्।

तात्पर्य—आकाश की ओर दृष्टि डालो, प्रीतम हंस (सूर्य) बनकर प्रकाशमान है। आकाश और भूमि के बीच देखो, प्यारा वसु (वायु) बनकर मस्ताना चाल चल रहा है। पृथिवी पर होत्र (अग्नि) के भेस में बुला रहा है। वही अतिथि बनकर घर में आता है। मनुष्य के रूप में तेज दर्शाता है; उजेले में वही चमकता है; व्योम (Ether) में वह है; पानी में वही (जल जंतुओं के नाम से) उत्पन्न

होता है; भूमि पर वही (वनस्पति के रूप में) उत्पन्न होता है, यज्ञ में वही प्रकट होता है; पहाड़ों पर वही (नदी झरनों के वेष में) निकलता है। वह सत्य है, वह महान् है।

चंपा में चतुर्भुज, मोतिये मोहनलाल।
केशवान् में केशव, अरगुट्टे गिरधारी है॥
गुलाब में गोपाल लाल, सोसनी में स्याम भाल।
सेवती में सीतापति, मरुवे मुरारी है॥
नरगिस में नारायण, दामोदर दाहूदी में।
क्योड़े में कृष्णरूप, श्यामतन धारी है॥
अनंत फूल फूलन में, फूल्यो अनंत राम।
फूल-फूल पात-पात वासना तुम्हारी है॥

इंद्रियों से श्रेष्ठतर, विचित्र शक्ति भरे, सच्चे आनंद और पवित्र जीवन की शिखर (कैलाश) पर विचरने वाला हिंदू शब्द-शास्त्र (व्याकरण) क्यों हाथ में लेता है? क्योंकि 'पाणिनि' ने यह दावा किया है कि उसका विषय मुक्ति का द्वार हो सकता है। महात्मा पंडित ज्योतिष-शास्त्र का किस लिये अध्ययन करता है? केवल इस लिये कि वेद का एक अंग (नेत्र) है। धर्मात्मा ब्राह्मण को औषधि (जड़ी, बूटी, रस आदि) के बनाने व करने में क्यों प्रीति हो जाती है? क्योंकि उसने सुना है कि कुछ औषधियाँ शुद्ध सतोगुण को बढ़ाती हैं, और इसी हेतु परमेश्वर से मिलने का सामान हैं। तर्क वादी अपने न्याय-शास्त्र की ओर हिंदुओं का चित्त कभी आकर्षित नहीं कर सकते थे, यदि अपने ज्ञान को संसार से मुक्ति देने वाला न वर्णन करते। साहित्य को केवल धर्म अर्थ और काम ही का साधन नहीं सिद्ध किया वरन् मोक्ष दिलाने वाला भी कहा है।

हिंदुओं के लग भग सब छंद सांसारिक बखेड़ों और जन-प्रीति (इश्क़ मिजाज़ी) का तो नाम ही नहीं जानते, यदि जन-प्रीति को कहीं स्थान दे भी दिया है, तो परमेश्वर की भक्ति और ज्ञान अपनी झलक दिखाए बिना नहीं रहे। हिंदी-भाषा का एक कवि प्रशंसा तो अपनी प्रिया के नयनों [नेत्रों] की कर रहा है किंतु भगवान् के समस्त अवतारों के नाम बोल गया है।

मच्छ-सम थरथरात, उग्रत दर कच्छ भात।
बावन से छलबे को, निश्चय कर हेरे हैं॥
सांत न निहारें हिया, फाड़े बारह-सम।
अड़बें को परशुराम, फिरत न फेरे हैं॥
तीक्ष्ण नरसिंह कदहों, बोध अवलोकवे को।
तारवे को राघव, यह ग्वाल चित मेरे हैं॥
मोहिबे को मोहन, कलंक बिन निःकलंक।
दसों अवतार कदहों प्यारी! नयन तेरे हैं॥

हिन्दुओं का साहित्य तो ज्ञान और भक्ति के समर्पण हो चुका है। भगवत्प्रीति अपने सारे चमत्कार दिखाती है।

Religion present in all its phases.

अर्थ—धर्म अपने प्रत्येक स्वरूप में विद्यमान है।

राग-विद्या क्यों प्यारी लगने लगी?—क्योंकि नारद, याज्ञ-वल्क्य, गौरांग आदि मुनि लोगों ने यह साक्षी दे दी कि सामवेद के गायन में उपयोगी होने के अतिरिक्त वैसे भी भजन संकीर्तन मन को वश में लाने का सरल साधन हो सकता है। हिंदुओं के यहां नाचने का कुछ मूल्य नहीं,

किंतु प्रेम के ज़ोर से राम के आगे नाचनेवाला भी राम की भांति पूजा जाता है।—

नाचना जो चाहे तो नाच रघुनाथ आगे।
गाया जो चाहे, तो गोविंद गुण गाओजी॥
भागना जो चाहे तो भाग मंद कामों से।
आया जो चाहे तो राम-शरण आवो री॥

शरीर को मोड़ना-तोड़ना, हड्डियों को ढीला करना, शरीर को तपाना, मांस को सुखाना [ अर्थात् हठयोग के आसन, बद्ध मुद्रा, आदि ] भी स्वीकार हैं, क्योंकि यह सुन लिया है कि सत्य-धाम तक पहुँचानेवाली सीढ़ी का हठयोग भी एक दंडा है। किंतु हाय! चाँदी सोना जिसका नाम सुनकर सादे लोगों की आँखें खुल जाती हैं, जिसके लिये घरों में खटपट और देशों में कोलाहल मचता है, वह चाँदी सोना हिंदुओं के यहाँ सच्चे आनंद का देने वाला सिद्ध नहीं हुआ। विद्वान् ब्राह्मणों ने सिद्ध कर दिया कि 'त्याग' 'त्याग', निःसंन्देह 'त्याग' आनंद और मुक्तिका साधन है। सोलह आने का रुपया धोखा खाए हुए मूर्खों को मानो सोलह कला-युक्त भगवान् से भी अधिक सम्मान योग्य हो, किंतु संसार का टका पैसा सच्ची राजधानी में व्यर्थ है, बरन् अप्रचलित और खोटे सिक्कों जैसा है। नीचे के शब्द एक सच्चे हिंदू के मन की दशा दिखाते हैं—

जैसे भूखे प्रीति अनाज, तृषावंत जल सेती काज।
जैसे मूढ़ कुटुंब परायण, तैसे नामे प्रीति नारायण॥

नामे प्रीति नारायण लागी, सहज सुभाव भयो वैरागी।
जैसे कामी कामिनी प्यारी, वैसे नामे नाम मुरारी॥

भूखे को रोटी, प्यासे को पानी, माँ को बच्चा, विषयी को स्त्री वैसी प्यारी नहीं होती, जैसी सच्चे हिंदू को सत्यात्मा [सत्यवस्तु] प्यारी होती है।—

यार ड़े दा सानूँ सत्थर चंगेरा, भट वे खेड़ियां दा रहना।
सूल सुराही ख़ंजर प्याला, विनग कसाबां दे सहना॥

तात्पर्यः - यदि शोक-भवन-कुंज [ शमशान ] में सच्चा प्यारा नहीं भूलता, तो वह स्वीकार है, किंतु वह राज-भवन अस्वीकार है जो प्यारे को याद से बिसार देता है। रक्त निकालने वाले नोकदार काँटे, मदिरा की सुराही की भांति प्रिय हैं, और ख़ंजर प्याले के समान प्यारा है, वधिक के कुल्हाड़े सिर पर बरसने अंगीकार हैं, इस शर्त पर कि हमारे प्रेमभाजन की दूरी [ पृथकता] न हो।

ऐसी उच्च दृष्टि वाले भारतवासियों के निकट सोने चाँदी की भला क्या पूछ ? सोने चाँदी के काम को तुच्छ न समझते तो और क्या ? सोनारों को शूद्र-पेशा माना गया। जंगलों में नंगे शरीर रहकर और फल फूल खाकर अध्यात्म-विद्या में समस्त जीवन व्यतीत करने वाले ब्राह्मणों को कपड़ा, तांबा लोहा, लकड़ी, मिट्टी आदि के व्यापार बिलकुल निरर्थक, निस्सार और बच्चों के खेल क्योंकर न मालूम होते ?—

चित्रं बट तरोर्मूले शिष्या वृद्धा गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्याश्च छिन्न संशयः॥

अर्थ—बट के पेड़ के नीचे बड़ी बड़ी आयुवाले जिज्ञासु एकत्रित थे। गुरू छोटी आयु का था। विचित्रता यह कि गुरू ने जिह्वा नहीं हिलाई, पर सबके संदेह निवृत्त कर दिए। यह कैसा व्याख्यान है ?—

मुअल्लिम कीस्त ? आरिफ़; दामने-सहरा दबिस्तानश;।
सबक ? ख़ामोशी व लरज़ाँ तिफ़ल सबक ख़्वानश।

अर्थ—यहां गुरु कौन है ? ब्रह्मज्ञानी, और जंगल का दामन उसकी चटशाला है। इस चटशाला में पाठ क्या है ? मौनता, और मेरा कांपता हुआ हृदय उसके यहां पाठ पढ़नेवाला लड़का है। इस परम शांति और सच्चे आनंद के खोजनेवालो ! परम सुख के अभिलाषियों को शारीरिक और मानसिक वा वैषयिक आवश्यकताओं से संबंध केवल नाम मात्र का था।

अतः दर्ज़ी, ठठेरा, लोहार, बढ़ई, कुम्हार इन सब को भी शूद्र-पेशा कहा गया। इसके यह अर्थ नहीं कि इमारत आदि का काम उन दिनों बहुत भद्दा होता था। इस कला में उन लोगों की योग्यता के प्रमाण बहुतात से मिलते हैं। पर ब्रह्मविद्या के साथ इन व्यवसायियों का सीधा संबंध ( direct relation ) न होने के कारण शूद्रों ही की श्रेणी में वे गिने गये।

भारतवासियों ! ज़रा आँखें खोलकर देखो, तुम कहाँ आकर गिरे। आज ब्राह्मणों के बालक [ महर्षि-कुमार ] ईंट, चूना, लकड़ी, लोहा की विद्या [इंजिनियरिंग] को उस ( सिंहासन ) पर स्थान दे रहे हैं जिसको ब्रह्मविद्या शोभित करती थी; कोहेनूर [ अनमोल हीरे ] को मुकुट से उतार कर उसके स्थान पर कोयला रख रहे हैं। हाय ! तुम अपने सिर को आइने में तो देखते !

अय पाश्चात्य विद्याओं और कलाओं की गंध से हक्का बक्का हो जानेवाले मेरे प्यारो ! तुम्हें राम कहां तक बताए। तुम स्वयं ज़रा होश में आकर गौर करो तो

पता लगे कि ये सब रेलें, तारें, तोपें, बंदूकें, स्टीम इंजिन, कारख़ाने आदि जिनकी प्रशंसा में गद्गद हो रहे हो, एक इंच भर भी पिछले लोगों की अपेक्षा आज कल के लोगों को अधिक आनंद नहीं दे रहे। सब ऊपरी हूहा हाहू (vanity) ही है।

**राम** यह नहीं कहता कि पिछले समय की बहलियों और यक्कों को फिर नए सिरे से प्रचलित करो, और धूँए वा बिजली की कलों को भारतवर्ष में पग न रखने दो। उसका मन्तव्य यह है कि इन नवीन पाहुनों को उचित मूल्य और मान पर लो। वह बात न हो कि घोड़ा मोल लिया था अपनी सवारी के लिये, उल्टे हमको ही गिरा कर वह रौंदने लग पड़े। बिल्ली के बदले पवित्र माता (ब्रह्म विद्या) को न बेच दो। एक (अनावश्यक) दिल्लगी के खेल में अपने आत्मा और प्राण की बाज़ी मत हार दो। सुख की खोज में सुख के धुर्रें मत उड़ा दो। वर्षा ऋतु में पपीहा पानी की बूँद के लिये अधीर होकर ऊपर को उड़ता है, किंतु बरसते जल में प्यासा रहता है, पानी की खोज ही पानी से वंचित रखती है। इस बरसाती जानवर वाला दशा मत होने दो। रीछ की भांति मित्र के मुँह से मक्खी उड़ाते-उड़ाते मित्र को थप्पड़ से प्राण हीन मत करो।

अंकगणित में एक भिन्न (fraction) के अंश (numerator) को बढ़ा देने से रक़म का मूल्य बढ़ जाता है; किंतु यदि साथ ही हर (denominator) भी उसी निष्पत्ति (ratio वा संख्या) से बढ़ जाय, तो मूल्य वैसा का वैसाही रहता है। जैसे $\frac{३}{४}$ $\frac{१२}{१६}$ $\frac{१५}{२०}$ $\frac{७५}{१००}$ $\frac{३७५}{५००}$। यही दशा पाश्चात्य कलाओं और आविष्कारों की है। वह अंश (विषय-भोग

की सामग्री) को बढ़ाने की चिंता में हैं. और इस उपाय से 'आनंद' की राशि को अधिक किया चाहते हैं—

$$\text{आनंद} = \frac{\text{विषय भोग की सामग्री}}{\text{तृष्णाओं का समुदाय}}$$

भारतवासियो! उनका अनुकरण तो करने लगे हो: किंतु देखना कि अंश को बढ़ाते समय हर (तृष्णाओं का समुदाय) उसी निष्पत्ति (संख्या) से नहीं, बरन् उस से भी अधिक संख्या से बढ़ा जाता है। जैसे नशे बाज़ आनंद के लिये इधर अफीम या शराब के सेवन को नित्य प्रति बढ़ाता जाता है, उधर नशे की तृष्णा भी वैसे ही अधिक होती जाती है। जो आनंद आरंभ में बहुत थोड़े परिमाण में प्राप्त होता था, वह आनंद अब अधिक परिमाण से नहीं मिलता। आयु व्यर्थ में नष्ट हो जाती है। अफ़ीम या शराब का मुहताज बिना मतलब बनना पड़ता है। यों भी तो देखो, अंश को कहां तक बढ़ा लोगे। भोग के सामान कहां तक एकत्रित करोगे। बाहरी सामान अपरिमित कभी नहीं हो सकते। सदैव भिन्न [fraction] कमी में ही रहेगी। इसी आनंद की राशि को बढ़ाने के लिये हिन्दुओं की शैली यह है कि तृष्णा को, जो हर के स्थान पर है, कम करना आरंभ करदो। तृष्णा ज्यों ज्यों सिमटती जायगी, आनंद बढ़ता जायगा। जब बिलकुल शून्य हो जायगी, तो अंश चाहे कुछ हो, चाहे न हो, समस्त राशि अनंत हो जायगी। और यह तृष्णा (हर) केवल ज्ञान के द्वारा ही मिट सकती है. और किसी उपाय से नहीं।

एक मनुष्य ने लैली-मजनूँ की कहानी पढ़ी। पढ़ते ही मजनूँ बनने की इच्छा उठ आई। अपनी स्त्री को त्याग कर

लैली का एक चित्र बना लिया और छाती से लगाए फिरना आरंभ कर दिया। अब मजनूँ वाला प्रेम तो चित्त में था नहीं, पर हां मजनूँ का प्रेम-पात्र तत्काल ले लिया; धिक्कार है ऐसे मजनूँ पर। न इधर के रहे, न उधर के रहे। आज कल के भारतवासी ! यदि तुमको अंगरेज़ों का अनुकरण करना हो स्वीकार है, तो मेरे प्यारो ! उनका प्रेम ( साहस, दृढ़ता, एकता ) ले लो, उनकी सनक ग्रहण करलो, किंतु उनका प्रेमपात्र लैली ( संसार के नाशवान् भोग-विलासों ) को मत ग्रहण करो। मजनूँ और अनुरक्त बनना हो, तो अपने घर की अत्यन्त तेजो-मयी ब्रह्मविद्या ( आत्म-ज्ञान ) पर बनो। अपने पहलू से चन्द्रमुखी प्रिया को उठाकर संसार रूपी बुढ़िया के चित्र पर दीवाने और आसक्त होना तुम्हें कलंक लगाएगा। हां इस संसार रूपी बुढिया को अपनी चंद्रकांता ( ब्रह्मविद्या ) की एक तुच्छ दासी बना लेने में कुछ हर्ज नहीं है।

दीन गँवाया दुनी से, दुनी न चल्ली साथ।
पैर कुल्हाड़ा मारिया, मूरख अपने हाथ॥
"स्वगृहे पायसं त्यक्त्वा भिक्षामटति दुर्मतिः।"

अर्थ—अपने घर की मलाई त्याग कर भीख मांगने को मूर्ख के अतिरिक्त और कोई नहीं जाता।

इतिहास साक्षी देता है कि शक्ति से भर देने वाली ब्रह्मविद्या का भारतवासियों ने जब कभी तिरस्कार किया, तभी नीचा देखा; अपने स्वरूप के महत्व को भूलकर हिंदू लोग जब कभी स्वार्थ परता के वश में पड़े, मरे।

अभी समय है, सँभल जाओ, शरीर के कीचड़ से निकल आओ। अपने शुद्ध स्वरूप में डेरे लगाओ। शिवोऽहं

शिवोऽहं की ध्वनि उच्च होने दो। और आनंद के कैलास पर पवित्र ॐ का फुरैरा लहराने दो। ॐ ॐ

हरि सँग ब्याह रचो रंग रंगना
आओ रे बमना! बैठो मोरे अँगना।
खोलो रे पोथी, विचारो मोरे लगना॥
गाओ रे सोहले, देखो शुभ शगुना,
हरि सँग गमन हरी *सँग †सँग ‡ना॥

अद्वैत सिद्धांत (भगवान् शंकर) के अनुसार आत्मा में विकास या संकोच [या संवृद्धि वा अपक्षय] नहीं हो सकता, वरन् केवल माया में होता है।

जैसे घर की चारदीवारी से उत्पन्न अंधकार उसी घर को छिपा देता है, जैसे सूर्य ही की तीक्ष्ण प्रभा सूर्य को देखने नहीं देती, जैसे नदी से उत्पन्न फेन नदी को आवृत कर लेता है, जैसे रज्जु ही में कल्पित सर्प-आकृति रज्जु को खपा लेती है; वैसे ही ब्रह्म में (स्वरूपाध्यास से) कल्पित माया (नाम-रूप) ब्रह्म को लुप्त कर देती है।

हजूमे-जलवा हम यक सर हिजाबे-जलवा हस्त ईं जा।
नक़ाबे-नेस्त दरिया रा मगर तूफ़ाने-उरयानी॥

अर्थ—यहाँ ज्योति की अधिकता ही ज्योति का आवरण है, नदी को कोई पर्दा नहीं वरन् उसके नंगेपन की आंधी (घटा) है।

फिर जैसे नदीजल फेन के बुर्क़ा (पर्दा) में से शब्दायमान होता है जैसे सूर्य मेघावरण को भासमान करके आवरण के बीच में से अपनी कांति की प्रभा विकीर्ण करता

* साथ † लज्जा ‡ नहीं अर्थात् हरि के साथ कोई लज्जा नहीं है।

है, जैसे चंद्रमा अपने ( ग्रहण के ) घूँघट में से तेजोमय मुख को दिखाता है, जैसे रज्जु कल्पित सर्प में अपनी लम्बाई और मोटाई प्रवेश करता है, जैसे दीपक की ज्योति काँच के आवरण ( चिमनी ) के भीतर से आँखें लड़ाती है [संसर्गाध्यास]; ऐसे ही ब्रह्म माया के आवरण में अपना तेज प्रविष्ट करता है, अर्थात् नाम-रूप संसार में सच्चिदानंद स्वरूप से विद्यमान होता है। जो वस्तु संसार में दृश्यमान होती है, उसके नाम रूप की तह में वास्तविक सत्ता सच्चिदानंद की ही है। अद्वैत-सिद्धांत के अनुसार इवोल्यूशन (विकास) इस माया ही में है। आत्मा में न्यूनाधिक ( उन्नति अवनति ) कैसी ?

**माया**

निशांधकार की काली चादर छा रही है। तारे जगमगा रहे हैं। किसी की मजाल ( शक्ति ) क्या कि इनकी संख्या का अनुमान लगा सके ? वाह री बहुलता ! एक ही पलंग पर एक दूसरे की गर्दन में बाहें डाले दूल्हा-दुलहिन आराम में पड़े हैं। किन्तु दूल्हा तो लाहौर के टाउनहाल में परीक्षा के पर्चे लिख रहा है, और दुल्हिन अपनी देवरानी या जेठानी से गिल्ला-उलाहना के लेन देन में लगी है। ऐ लो, लड़ाई-झगड़ा आरंभ हो गया ! चुप रह बीबी ! चुप रह। तेरा पति देवता परीक्षा के पर्चे लिख रहा है, कोलाहल बंद कर। उसको (disturb) डिस्टर्ब मत कर ( अर्थात् उसका हर्ज़ मत कर )। ए लो ! वह चौंक पड़ा। नींद उचाट हो गई। कैसी परीक्षा ? किस का टाउनहाल ? यहाँ तो सुकुमारी है और आप है। कमरे के बाहर आकर देखा तो कोहरा ही कोहरा के ढेर लग रहे हैं। हाथ फैलाया नहीं सूझता। प्रभात का पेश-खेमा

( आगमन का चिन्ह ) अभी दृष्टिगोचर नहीं आता। अरे शुक्र! तेरा नृत्य- गायन क्या हुआ? तुम्हारे सखा और सहचर ( तारे ) शादी को भूल बैठे?

दूल्हाराम ने नौकर को पुकारा। उत्तर न मिला। निकट जाकर देखा, तो नींद में खर्राटे भर रहा है। हमारे नवयुवक की छोटी सी छाती में हलचल मच गई। मन में एक क्षणिक आवेश उत्पन्न हो गया। मुखमंडल भयावनी निशा से भी अधिक भयानक बन गया। नौकर को अशिष्टता से जगाया और कान खींचकर ताकीद की कि अब आँख न झपके, हुश्यार ( सावधान ) रहे, रात बड़ी डरावनी और भयानक है, हर प्रकार का भय है, इत्यादि। इधर नौकर जगा और नाखुश हुआ। उधर मालिकराम पढ़ने के कमरे (study room) में घुसे। लैम्प रौशन करके (Bain's moral science) बेन साहब कृत नैतिक विज्ञान पढ़ने लगे। कोई आधा पृष्ठ पढ़ा होगा कि आँख लग गई। पैर भूमि पर, कमर कुर्सी पर, और शिर पुस्तक के ऊपर मेज़ पर रक्खे बेहोश पड़े हैं। इनको तो नींद की गरम गोद में छोड़ो। अब बाहर ठिठुरते हुए नौकर की सुध लो। वह बिचारा बड़े झगड़े-झंझट में पड़ा है, वरन् लड़ाई-भड़ाई दंगे में लगा है। किससे लड़ रहा है? क्या चोर घर में आ घुसे? नहीं। स्वप्न के संग्राम पर अड़ा है। नींद से ज़ोर आज़माई ( बल-परीक्षा ) कर रहा है। आंखे मलता है, जमाइयाँ आती हैं, अँगड़ाइयाँ लेता है। हाय! कब पौ फटेगी, तड़का होगा, प्रभात मुँह दिखाएगी? बेर बेर आकाश को तकता है। रात कटती ही नहीं! कभी टहलना आरंभ करता है, फिर मारे ठंढ के चारपाई की शरण लेता

है। हाँ, खूब सूझी। गाना आरंभ करो। समय जान न पड़ेगा। सातों स्वर मिले हुए ध्वनि से गाने लगा।

नींद तोहि बेचोंगी आली, जे कोइ गाहक होय।
आए थे मोहना, फिर गए अँगना, मैं बैरन रही सोय॥
सूरदास प्रभु अब जो मिलोगे राखोंगी नैन समोय।
नींद तोहि बेचूंगी आली॥

गाने की आवाज़ सुनकर कमरे के भीतर बाबू जी जाग पड़े और पढ़ने लगे। नौकर लहरा-लहरा कर गा रहा है, अपनी ध्वनि में मस्त हो रहा है, सवेरे और शाम को बिलकुल भूल बैठा है।

अस्तु। उसे भूलने दो, किन्तु प्यारे पाठकों! हम तो ( हंस ) सूर्य भगवान् का शुभागमन नहीं बिसारेंगे। ताज़गी ( प्रफुल्लता ) देने वाली रौशनी चुपचाप इस सौंदर्य के साथ सूर्य से भूमि पर गिरती जाती है जैसे एक ऊँचे उड़नेवाला हंस का सफ़ेद पर झड़ा हुआ रह रह कर धीरे धीरे भूमि से आ लगता है। इस विचार के विरुद्ध जो लांगफ़ेलो ने निम्न-लिखित पद्यों में प्रकट किया है।

The day is done and the darkness
Flalls from the wings of night,
As a feather is wafted downward
From an eagle in his flight.

अर्थ—दिन बीत गया, अन्धकार रात के बाहुओं से इस प्रकार बरसने (झरने या गिरने) लगा, जैसे कि उड़ते हुए हंस का पर नीचे गिरता है।

प्रभात कालीन कुकट(मुर्ग) से अपने हृदय और नेत्रों

के तेज़-दाता के आगमन का संवाद सुनकर अगाध आनंद के कारण वसुधा के आँसू (ओस) निकल पड़े हैं, अथवा यों कहो कि हंस (सूर्य) के भोजन निमित्त मोतियों के थाल भरकर प्रकृति रूप दुल्हिन भेंट कर रही है। यह कुहरा, और जल-वाष्प हैं कि दर्शन की प्रतीक्षा में वसुंधरा अपने हृदय के बुख़ार (जोश) निकाल रही है? किन्तु ये गिल्ले-उलेहनों के ढेर तो प्यारे का ज्योतिर्मय स्वरूप देखने से पहिले ही दूर हो जाते हैं।

दिल ढेर बुखारों के लगाता है क़फ़ा में।
उड़ जाते हैं खुरशेद सा जब रू नज़र आया॥

गुफ़्ता बूदम कि चू आई ग़मे-दिल बा तो बिगोयम्;
चे कुनम कि ग़म अज़ दिल बिरवद चो तो आई। १
उम्रे-शुदाः रोज़े-ब रुखत सेर नदींदेम।
ज़ीरा कि तो मे आई व मन मेरवम अज़ होश। २

अर्थ—मैं ने कहा था कि जब तू आएगा तो हृदय का दुखड़ा तुझ से वर्णन करूँगा, मगर क्या करूँ कि जब तू आता है, तो मैं बेहोश हो जाता हूँ।

कहने देती नहीं कुछ मुँह से मोहब्बत तेरी।
लब पै रह जाती है आ आ के शिकायत तेरी॥

याद सब कुछ थे हमें हिज्र के सदमे-ज़ालिम।
भूल जाता हूँ मगर देख के सूरत तेरी॥

गगन मंडल का महारथी (सूर्य) किरणों के भाले हाथ लिए अपने सुनहरे घोड़े को उड़ाता चला आता है। यह ख़बर पाते ही अंधकार की सेना के मनचले वीरों ने एकत्रित होकर जी तोड़ संग्राम (desperate

struggle) पर कमर बाँधी है।, सर्दी समस्त रात्रि की अपेक्षा अधिक हो गई, नींद और आलस्य ने यद्यपि रात भर कोई कसर न उठा रक्खी थी, किंतु प्रभात के समय टैक्स वसूल करना इस बहाने बाज़ी से आरंभ किया कि संसार में कोई अमीर बचने न पाया। धुंध के दल बादल ने अंधेरे की सहायता को आकर बड़े घमंड से डेरे डाल दिए। ऐ लो, बादल भी मारे उमंग के माथे में बल डाले आ उपस्थित हुए, आँखे दिखाने लगे और गरज-गरज कर डराने लगे। रात के आरंभ में क्या ही मन लुभावनी चाँदनी ( उजियारी ) चिटक रही थी। अब तह दर तह से अंधियारी छा रही है।

रिमझिम रिमझिम मेंहा बरसे आ रे ! बादर कारे।

आलस्य, अंधकार और धुंध आदि की सेनाएँ सूर्य के महत्त्व को नष्ट करने पर कैसी तुली हुई हैं ! क्या सचमुच सूर्य के रथ को रोक लेंगे ? यदि ऐसा हो गया तो संसार की क्या दशा होगी ! ईश्वर करे, सूर्य की जय हो ! प्यारे ! घबराओ नहीं, कहाँ तो अंधकार के अधिकारि वर्ग और कहां सूर्य ! सामना ही क्या है ? रातरानी के जंगी लाट लाख ज़ोर मारें, सूर्य का बाल बाँका नहीं कर सकते। चना उछल उछल कर भाड़ को नहीं फोड़ सकता। प्रकाशमान सूर्य, और विरोध से उसका बिगाड़ हो, बिलकुल निरर्थक है।

वह देखना ! मेघों की तह दर तह पर्दों को काटकर कोहरे के कवच को चीर कर उसकी किरणों की कृपाण भूमि के वक्षस्थल को लाल करने लगी। विजयी द्यौ सम्राट् (सूर्य भगवान्) विराजमान हुआ।

नवीन रौशनी ( ज्ञान ) वालो ! स्मरण रक्खो, अज्ञान

की काली रात व्यभिचार का कारण होती है (Deeds of darkness are committed in the dark), अंधकार (मूढ़ता) के काम (व्यभिचारादि) अंधकार (मूढ़ता) में ही किए जाते हैं, और जब इसका अंत आने लगता है, तो बला का लड़ाई-टंटा करवाती है। किंतु यह लड़ाई झगड़ा जाज्वल्यमान ज्योति (सूर्य) की अभिवृद्धि का कारण कदापि नहीं है। सूर्य को तो निकलना ही निकलना है, रुक नहीं सकता। रामानुज के मतानुसार तुम्हारे भीतर के सूर्य (हंस, आत्मा) ने सुस्ती की रुकावट को चीर फाड़ और अज्ञान के पर्दों को छिन्न-भिन्न करके अंततः प्रकट होना ही है, इससे जीवात्मा का बेहद (असंख्य) भरा हुआ बल इवोल्यूशन (विकास) का कारण है। इस स्वाभाविक गुण के कारण से च्यूँटी, बिच्छू, साँप, बिल्ली बंदर आदि शरीरों की मंज़िलों (योनियों) को पार करता हुआ यही जीवात्मा मानव शरीर तक उन्नति पाता है, और यही आत्मा अपने स्वाभाविक प्रकाश के बल से अज्ञान के अंधकार को नाश करके ज्ञानवान् के रूप में सूर्य को इस प्रकार संबोधित करता है।

पूषन्नेकर्षेयम सूर्य्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ
पुरुषः सोऽहमस्मि॥ (यजु० ईशावास्योपनिषद मं० १६)

अर्थ—हे पालन करने वाले, एकर्षि (अकेला चलने वाले), यम (न्यायी), और सृष्टि में सब से श्रेष्ठ सूर्य! हटा दे अपनी किरणों को, सँभाल ले अपने प्रकाश को, जिस से मैं तेरा सौम्य स्वरूप देखूँ तो सही। (अहा!) जो तेरा स्वरूप है, वही मैं हूँ।

जो तू है सो मैं हूँ, जो मैं हूँ सो तू है; बरन् मैं ही मैं हूँ, तू कहां है ?

खाके-पस्ती से अगर दामन तेरा हमदम नहीं।
यह फ़ज़ीलत का निशाँ ऐ नैयरे-आज़म नहीं॥
आह ! तू अपनी तजल्ली का अगर महरम नहीं।
हमसरे-यक ज़र्रए-खाके-दरे आदम नहीं॥
नूरे-मसजूदे-मलक ज़ेबे-तमाशा ही रहा।
तू सदा मिन्नत पिज़ीरे-सुबह फ़रदा ही रहा॥

इवोल्यूशन ( विकास ) के विषय भगवान् शंकर का श्री रामनुज से इतना ही अंतर है जितना ज्योतिष शास्त्र में सूर्य केंद्रक (Heliocentric) और भूकेंद्रक (geocentric) के मध्य में है। जहां तक व्यवहार का संबंध है, भगवान् शंकर के यहां श्रीरामानुज वाली समस्त व्याख्या स्थिर रक्खी गई है, किंतु वास्तविक तत्त्व को छिपाए नहीं रक्खा, और बहुत ही सुस्पष्ट ढंग पर दिखाया है कि जैसे सूर्य रजनी रूपी मुशक ( कर्पूर ) को पलायिता करता उदयांचल से मध्याकाश तक विकाश करता और राशिचक्रों में उन्नति करता प्रतीत होता है, किंतु वस्तुतः न कभी उदित होता है, न अस्त, निकट आता है, न दूर जाता है, हिलता है न जुलता है, सदा अपने तेज में एकसाँ आनंदित रहता है; वैसे ही वस्तुतः आत्मा कभी घटता है न बढ़ता है, उस में इवोल्यूशन है न इनवोल्यूशन, उत्कर्ष है न पतन, उन्नति है न अवनति, सदा एकरस अपनी महिमा में मस्त पड़ा है, यद्यपि अंधकार की पंक्तियों को तोड़ता और अज्ञान की सेना को पराजित करके प्रकाशमान दिन ( अर्थात् अपना सुंदर राज्य ) चारों ओर फैलाता मालूम देता है, किंतु यह

इवोल्यूशन केवल माया में है। घूम तो रही है भूमि और गति समझी जा रही है सूर्य की; उठ तो रहा है प्राण प्यारे के आनन का पर्दा, किंतु विस्मित और प्रेम-विह्वल (आशिक) की भावना में अपने प्यारे का चंद्रानन बढ़ और फैल रहा है; दौड़ तो रहा है मेघों का आवरण, किंतु बच्चे उसे चंद्रमा का चलना समझकर घंटों पड़े घूरते हैं—"वह देखो, चंद्रमा किस तीव्र वेग से दौड़ा जा रहा है, (तालियां बजाकर) अहाहा !!! वह मेघों से निकल आया ! वह बादलों से निकल आया !!—

रुख़े-पुर ज़िया के नज़ारे ने मुझे बेदे-मजनूँ बना दिया;
तेरे सदक़े सदक़े मैं नाज़नीं तू ने बुर्क़ा मुँह से उठा दिया।

यथा चंद्रिकाणां जले चंचलत्वं।
तथा चंचलत्वं त्वापीह विष्णो॥ (शंकरसूत्र)

तात्पर्य—जैसे वास्तव में नदी की तरंगें तो कूदती फांदती दौड़ती भागती चली जाती हैं, किंतु जान पड़ता है कि चंद्रमा नाचता उछलता है; वैसेही इवोल्यूशन (विकास) और उदय आदि तो माया में हैं, किंतु भूल से आत्मा में कल्पित होते हैं।

पानी ही में बुलबुले तैयार होते और नाश होते हैं। उनका दिखाई देना और रंग दिखाना यद्यपि सब प्रकाश ही प्रकाश है, किंतु फिर भी प्रकाश इन परिवर्तनों और रूपांतरों से पृथक् है।

हुबाब वार ज़ि बहरे-तमाशा आमदाएम।
कि सर कशेम व निगाहे कुनेम व आब शवेम॥

अर्थ—बुलबुले की भाँति हम तमाशा देखने आए हैं

जिससे कि शिर ऊँचा करें, देखें और फिर वही पानी हो जायँ।

**जीम**—जाओना आओना नहीं ओथे।

कोहाँ वाँग हमेश अडोल है जी ॥
जिवीं बद्दलाँ दे चले चँद चलदा।
लग्गे बालकां नूँ एह भूल है जी ॥
चले देह इंद्रिय मन प्राण आदिक।
ओह देखनेहार अडौल है जी ॥
बुल्हाशाह सँभाल खुशहाल हूजे।
एन आरिफ़ा दा एहो बोल है जी ॥

आत्मा के असंग होने को सांख्य-शास्त्र ने भी बड़े ज़ोर से स्वीकार किया है।

"असंगोऽयं पुरुषइति"। सांख्य दर्शन १—१५

अर्थ—यह पुरुष (आत्मा) संग (संबंध)-रहित है।

**शीन**—शुबहा नाहीं ज़रा एक इसमें।

सदा अपना आप सुरूप है जी ॥
नहीं ज्ञान अज्ञान दी ठौर ओथे।
कहाँ सूर में छाँव और धूप है जी ॥
पड़ा सेज के माँह है सही सोया।
कूड़ स्वप्न का रंक और भूप है जी ॥
बुल्हा शाह सँभाल जद मूल देख्या।
ठौर ठौर में वही अनूप है जी ॥
बुल्हाशाह तूँ भूप अचल्ल बैठा।
तेरे आगे प्रकृति का नाच है जी ॥

आत्मा के असंग होने और केवल प्रकृति के विकास और उन्नति पाने को पंडित ईश्वरकृष्ण ने आश्चर्य जनक कवियों जैसी सूक्ष्म विचारणा के साथ अपने प्रामाणिक ग्रंथ सांख्य कारिका में दिखाया है।

रंगस्य दर्शयित्वा निवर्त्तते नर्त्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः॥
( कारिका ५६ )

अर्थ—बहुरूपिए ( नट ) लोगों का नियम है कि भेष बदलकर अमीरों को धोका देते हैं किंतु बदले हुए वस्त्र और वेष के नीचे यह कामना उनके मन में अत्यत प्रबल होती है कि तमाशा दिखाते ही जिस प्रकार बन पड़े अपना असली रूप (प्रकृत स्वरूप भी खोल दें। निदान यह देख कर कि अब चकमा चल, गया मंत्र काम कर गया, चट प्रणाम करते हैं, और इस प्रकार आशीर्वाद देते हैं— "बड़े बड़े इक़बाल! अटल प्रताप! राज पाट बना रहे, घोड़ों जोड़ों की कुशल! भगवान् रक्षा करें! इत्यादि।" यही दशा प्रकृति की है। पुरुष को धोका तो देती है, किंतु जी में यह ठाने है कि अपना आप छिपाया तो सही, अब ज्यों त्यों करके दिखा भी दूं, भेद खोल ही दूँ।

हाँ सच है, चींटी बंदर आदि के शरीरों में यदि पुरुष ने नीचा देखा और दुःख पाया तो प्रकृति के कारण; मनुष्य का चोला पहना तो प्रकृति के कारण; ज्ञानवान् कहलाया तो प्रकृति के कारण; जब बंध और नीच दास होने के विचार का कुफर (भ्रम) टूटा और यह जान पड़ा कि 'मैं पृथक हूँ, पवित्र हूँ, असंग हूँ, निर्लेप हूँ, स्वतंत्र हूँ" ।—

असंगोऽहमसंगोऽहमसंगोऽहं पुनः पुनः।






यह भी प्रकृति ही के कारण।

इस ज्ञान के प्राप्त हुए पुरुष को छोड़ कर प्रकृति अपनी राह लेती है, और पुरुष आनंदघन अपने शुद्ध स्वरूप में रह जाता है, यही मुक्ति है। तात्पर्य यह कि प्रकृति सब कौतुक दिखा आप ही हट जाती है। ईश्वर करे इस प्रकृति-पुरुष के वियोग की घड़ी शीघ्र प्राप्त हो। यह योगशास्त्र का उद्देश्य है।

उपर्युक्त कारिका का शब्दार्थ यह है—"जैसे कंचनी सभा में जब पूरा-पूरा नाच दिखा चुकती है. तो अपने आप ही हट जाती है, वैस ही प्रकृति जब अपने आपको पुरुष के आगे प्रकट कर देती है. तब आप ही छोड़ जाती है"

ठगिनी आस्तीन का सांप बनकर किसी के साथ जा रही हो तो कपट भरी बातों से बहुतेरा मन लुभाने का प्रयत्न करती है, पर जब उसे यह ज्ञात हो जाय कि इन्हें मेरे ठगिनी होने का पता लग गया है, तो गधे की सींग की तरह लुप्त हो जाती है। ठीक इसी प्रकार प्रकृति की क़लई खुल जाने पर पुरुष को तत्काल छुटकारा मिल जाता है।

अब नहीं मालूम हमारे महात्मा पं० ईश्वरकृष्ण जी महाराज किस प्रकार इस व्यभिचारिणी वेश्या (प्रकृति) के खेलों की फीस लेकर उसके वकील बन बैठे। आप कहते हैं

नाना विधैरुपायै रुपकारिण्य नुपकारिणः पुंसः।
गुणवत्यगुणस्य सतस्तस्यार्थमयार्थं कं चराति ॥ (६०

अर्थ—प्रकृति तो पुरुष की भांति-भांति की सेवाएं करती है, किंतु उसके बदले में पुरुष कोई उपकार नहीं करता। प्रकृति गुणोंवाली है, पुरुष निर्गुण है, तभी तो प्रकृति की

प्रशंसित गुणशीलता देखो, कृतघ्न (पुरुष) के पक्ष में कैसी यत्नवान् और तत्पर है।

इस विषय को एक और पंडित जी महाराज ने अद्वितीय रीति से हिंदी पद्य में पिरो दिया है। यद्यपि राम को आश्चर्य होता है कि वृद्ध पंडितों के यहां स्त्री का कुछ ऐसा साम्राज्य क्योंकर आ गया कि स्त्री (प्रकृति) के गीत गाते थकते ही नहीं। बात-बात में बहू जी को प्रधान बना दिया।

लखो यह दूलहा दुलहिन कैसे।

अति बेमेल विचित्र भाव के कहूँ लखे नाहिं ऐसे ॥
दुलहिन अति ही सुघर सुहावन जोबन उन ऐसे।
दूल्हा याहि लखत "चुप" को है बैठो उजबक जैसे ॥
दुलहिन अतिगुणवंत चतुर त्यों हाव जाव हो वैसे।
दूल्हा गुण की बात न जाने पूरो गोबर गणेसै ॥
सब की एक दुल्हिन बहु दूल्हा पर सबरे एक ऐसे।
दुल्हिन ही बहु नाचत गावत, वे सब जैसे के तैसे ॥

**राम** केवल इतना ही पूछता है कि महाराज वकील साहब! ' मियां बीवी राज़ी तो क्या करेगा क़ाज़ी ", जब प्रकृति स्वयं अपना नाच-गाना, अपनी अठखेलियां अपना सभी कुछ पुरुष की एक दृष्टि पात पर बेच देने को राज़ी हैं, तो आप कौन है उनकी शिफारिश करने वाले ? तलबे न बुलाए, वकील बन के आए [ Unsolicited—solicited बस भूल से, स्वतः पड़ जाने वाली एक दृष्टि! और कुछ नहीं! इस पर समस्त संसार (प्रकृति) के तन मन धन का सौदा हो गया। ( Bargain Struck)

मस्त गश्तम अज़ दो चश्मे साक़िये-पैमाना नोश।
अलफ़िराक़ ऐ नंगो-नामूस, अलविदा ऐ अक़्लो-होश।

अर्थ—मैं प्याला पिलाने वाले साक़ी की दोनों आँखों से मस्त हो गया हूं, ऐ अपमान! दूर हट और ऐ बुद्धि और होश! दूर हो।

या रब ईं चशमसत या जादूसत कज़ कैफ़ियतश;
हम चो दरियाए-मुहीत ईं क़तरा अम आमद बजोश।

अर्थ—हे ईश्वर! यह आंख है या जादू है कि उसकी कैफ़ियत (दशा) से यह मेरा बिंदु (आंख का आंसू) घेर लेने वाली नदी की भांति आवेश में आ गया है।

इस जोगी दे नैन कटोरे। बाजाँ वांगन लैंदे डोरे।
रांझा जोगी ते मैं जुग्यानी। उसदी ख़ातिर भरसाँ पानी।

हाय दृष्टि रूपी मद्य! ऐ उपद्रवी नेत्र! तू ने ग़जब [आश्चर्य] किया, न केवल मारे मस्ती के प्रकृति को भांति भांति के नाच नचाए, बरन् तेरी कृपा से कोमलता की मूर्ति [गोबरगणेश] और शून्य-मुख [तूष्णी] पुरुष को प्रकृति के हृदय-यकृत और प्रत्येक रोम रोम तक पदारोपण करना पड़ा।

कोठे से नज़ाकत तो उतरने नहीं देती।
तुम आँखों से दिल में मिरे क्योंकर उतर आए॥
कोठे तों चढ़ पाइया झाती, दो नैनाँ दी रम्ज़ पिछाती।

धाय गया नी! जानी लूँ लूँ दे विच।
हाय धाय गया नी! सोहना लूँ लूँ दे विच॥

यह दृष्टिपात क्या बला थी। इधर प्रकृति में तिल-मिलाहट डाल दी, उधर पुरुष विचारा अपने नयन बाण के साथ ही प्रकृति की प्रत्येक नस में जा गिरा। इधर जादू-

भरी दृष्टि का भाला बिचारी प्रकृति के यकृत में चुभा, उधर पुरुष उसके हृदय में बंदी हो गया।

अबरूए-कहकशाँ भी अनोखी कमंद है।
बेक़ैद हो असीर जो देखूँ उधर को मैं॥

हाय एकान्त कारावास।

अपना यह दावा नहीं दिल में कोई तेरे सिवा।
उनका यह इलज़ाम! अच्छी क़ैदे-तनहाई हुई॥

यदि भोला-भाला पुरुष बेमुरव्वत (कृतघ्न) था, तो भी उसका पल्ला दोष से नितान्त मुक्त है, क्योंकि उसने अपने लिये दंड प्रकृति को आप बता दिया।

ज़िंदाँ में जो ज़िंदा भेजना हो, अपने दिले-तंग में जगह दो।

ऐ पुरुष (यूसफ़)! यह कैसा बंदीपन है! जुलेखा का हृदय-दर्पण बंदीघर बना है।

नयायद जुज़ ख़यालत दर दिले-मन।
बजुज़ यूसुफ़ सरे-ज़िंदाँ कै दारद॥ १

यूसुफ़े-गुम गश्ता रा बेरूँ मजोय।
दर दरूने-चाहे-दिल याबी सुराग़॥ २

अर्थ—तेरे ख़याल के सिवा मेरे दिल में और ख़याल नहीं आता है। यूसफ़ के अतिरिक्त क़ैदख़ाने का विचार और कौन रखता है।

लुप्त हुए [गुप्त] यूसफ़ को बाहर मत ढूँढ। हृदय के कूप में तू उसका पता पायगा।

......यह प्यारे की छाया (प्रतिबिम्ब) है जो जुलेखा रूपी प्रकृति के भीतर प्रविष्ट होकर संसार-रूपी ऊधम मचाता

है। यही प्रतिबिंब वीर्यविंदु की भांति प्रकृति के पेट (गर्भ) में स्थिर होकर सृष्टि के रूप में उत्पन्न होता है।

ज्ञान आने पर प्रकृति की कलोल बंद हो जाने को अनोखे ढंग से इस प्रकार वर्णन किया है।

प्रकृतेः सुकुमारतरं न किंचिदस्तीति मे मतिर्भवति।
या दृष्टास्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य॥ (कारिका ६१)

अर्थ—मेरी सम्मति में प्रकृति अत्यन्त दर्जे की लज्जावती है, जब उसे तनिक भी संशय होता है कि मैं देखी गई हूं, तो बस फिर पुरुष के सम्मुख भूले से भी नहीं आती।

व्याख्या—जैसे कोई राजकुमारी राजप्रासाद के झरोखे में बैठी शृंगार कर रही हो, तो जहां तक उसे यह विचार रहता है कि मुझे कोई मर्द नहीं देख रहा है, अपने बनाव शृंगार में लगी रहती है, ज्योंही उसने यह समझा कि मुझे पुरुष ने देख लिया है, झट खिड़की बंद की और ऐसी चंपत हुई कि फिर सूरत नहीं दिखाती। यही दशा प्रकृति की है। जब यह जान पड़ा कि मेरा ज्ञान हो गया है, फिर नहीं रहती। ज्योंहीं ज्ञानवान् ने उसे यों संबोधित किया कि—

ज़ाले-जहाँ शनो सखुन इश्वए-नाज़ुकी मकुन।
दिल बतो नेस्त मुब्तिला तन तलमला तला तला॥

अर्थ—ऐ जगत् की बुढ़िया (अर्थात् संसार)! बात सुन। नख़रे-टखरे मत कर। मेरा दिल तुझ में फँसा नहीं। तन तलमला तला तला (सारंगी का स्वर)

तत्काल अपनी जिह्वा से यह स्वर उच्चारण करती हुई—

"कि मन नेस्तम आँचे हस्ती तुई।
कि मन नेस्तम हरचे हस्ती तुई॥

हम इस्म तुई व हम मुसम्मा।
आजिज़शुदह अक़्ल ज़ीं मुअम्मा॥

अर्थ—कि मैं नहीं हूँ. जो कुछ है तू ही है, कि मैं वस्तुतः कुछ नहीं, तू ही तू है। तू ही नाम और तू ही नामवाला है। बुद्धि इस रहस्य के जानने से व्याकुल हुई २ है।"

पुरुष में विलीन हो जाती है। एक पुरुष ही पुरुष रह जाता है।

जाए-खुद चूँ मुहरए-शतरंज ख़ाली मी कुनम।
दुश्मने-मन मी शवद दर ख़ानाए-मा मेहमाँ॥

अर्थ–शतरंज के मुहरा की तरह जब मैं अपना स्थान ख़ाली करता हूँ, तो मेरा शत्रु मेरे घर में अतिथि होजाता है।

दिखाया परकृती ने नाच पूरा, सिले में उड़ गई ये है सितम है
ग़लत गुफ़्ती, शिकायत की नहीं जा,
बनी खुद पुरुष वह अदलो करम है।

तस्मन्न बध्यतेऽसौ न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः॥ कारिका ६२

अर्थ—अतः निश्चय पूर्वक कोई भी व्यक्ति वस्तुतः न तो बद्ध होता है, न मुक्त, और न आवागवन के अधीन होता है, प्रकृति ही सब पुरुषों के आगे फंसती है, स्वतंत्र होती है और जन्म-मरण में घिरती है।

व्याख्या–जैसे वस्तुतः सेना हारती-जीतती और लड़ती है किन्तु कहा यह जाता है कि राजा हारा जीता और लड़ा. वैसे ही यद्यपि यों कहा जाय कि पुरुष (आत्मा) जीवन के बंधन में फंसा, मुक्त हुआ या आवागवन में रहा था, परंतु वस्तुतः प्रकृति बद्ध होती है, छुटकारा पाती है

या दुःख सहती है ; आत्मा कदापि लिपायमान नहीं होता। जैसे नारियल की 'जलघड़ी' तो पानी में बँधी रहती है, तैरती है और डूबती है, पर उसके डूबते समय पिटता घड़ियाल है, गजर बजने लगती है ; वैसे ही प्रकृति (शरीर आदि ) तो प्रतिपालन ( पुष्टि ) बंध और छुटकारा में आती है किंतु नाम पुरुष का होता है। मर तो गया शरीर, अनजान लोग कह उठते हैं कि अमुक पुरुष मर गया।

"पुरुष अनेक हैं" सांख्यवालों की यह भ्रांति जताने के लिये राम का केवल इतना ही प्रश्न है कि एकांत की उच्चता पर चढ़कर ज्ञान का दूरदर्शनयंत्र लगाकर तनिक बताओ तो सही ' कभी अनन्त ( अपरिच्छिन्न ) भी एक से अधिक हो सकता है ?"

यहाँ पर इवोल्यूशन के संबंध में कुछ अक्षर और लिख देने उचित हैं।

मेरे प्यारे ! टिंडल, कोम्टे, हेलमहोल्टज (Tyndall, Comte and Helm-Holtz को पढ़ते-पढ़ते यह प्यारा शिर आपका कुछ चकराया हुआ ज्ञात होता है; थकावट के लक्षण प्रकट हैं; आओ चित्त को प्रफुल्लित करने के लिये गंगा-किनारे की ठंढी-ठंढी हवा खाएँ। यह कैसी स्वच्छ तख्त के समान शिला है। इसपर विराजमान हूजिएगा। वायु कैसी रह-रहकर चल रही है।

अँगरेज़ी पढ़ा हुआ ( बैठकर ). महाराज ! विज्ञान तो यही जनाता है कि बल और शक्ति से काम लेकर अपने अधिकारों को स्थिर रखना, अपनी महिमा को बढ़ाए जाना और जीवन का आनंद उठाना हमारा ठीक कर्तव्य है। ऐसा

करने में यदि किसी को हानि पहुँचती है, तो वह अपनी नासमझी और दुर्बलता का दंड स्वयं पा रहा है, हमें क्या?

**राम**—एक बात में तो हिंदू शास्त्र आपके विज्ञान के साथ बिलकुल सहमत हैं। शास्त्र भी आज्ञा देते हैं कि अपने अधिकारों को स्थिर रखना और अपनी बड़ाई को बना रखना मनुष्य का सब से महान् और सब से प्रथम कर्तव्य है। दुःखों का दूर करना और परम आनंद का प्राप्त करना यही ब्रह्मविद्या का लक्ष्य है। सांख्यदर्शन के पहले ही सूत्र में तीनों प्रकार के दुःखों (बाह्याभ्यन्तर और शारीरक) यानी आधिदैविक, आधिभौतिक आध्यात्मिक) को जड़ से दूर कर देना परम पुरुषार्थ (कर्तव्य) कहा गया है। यथा—

अथ त्रिविधदुःखात्यंतनिवृत्तिरत्यंत पुरुषार्थः। (सांख्य १-१)

हिंदू-शास्त्र भी मनुष्य-जीवन को गनीमत समझते हैं। वेदांत तो मरने के पश्चात् मुक्ति का भरोसा नहीं करता, इस विषय में ईश्वर से भी उधार नहीं, नक़द मुक्ति और परमानंद हाथो हाथ लिए बिना उनका पीछा नहीं छोड़ता। उपनिषदें दर्शनी हुंडी से भी बढ़कर हैं। पाश्चात्य विज्ञान और ब्रह्मविद्या एकसाँ प्रयोजन को पूरा करने में कहाँ विरोध कर जाते हैं?।

पंजाब के देहात में नियम है कि नाई लोग सामान्य सेवकों का भी काम देते हैं। बहुत समय का वृत्तांत है कि एक गाँव के पटवारी ने अपने नाई को बुलाकर अति ताकीद से कहा कि "बहुत शीघ्र भोजन करके यहाँ से सात कोस पर मेरे समधी के गांव में जाओ, अत्यंत आवश्यक संदेशा भेजना है।"

नाई बिचारे के तेज़ी-जल्दी से हाथ-पाँव फूल गए। घबराया-घबराया अपने घर गया। एक बासी रोटी अपनी स्त्री से लेकर एक अँगौछे के खूँट में बांधी, इस विचार से कि कहीं रास्ते में खा लूँगा, और झट चलता बना। गया गया, जल्दी जल्दी पग बढ़ा रहा है, अपने स्वामी की आज्ञा किस सच्चे हृदय के साथ पूरी कर रहा है। किंतु ऐ भोले! तू ने चलते समय संदेशा तो पटवारी से पूछा ही नहीं, समधी से जाकर क्या कहेगा ?

नाई को इस बात का विचार ही नहीं आया। वह अपनी जल्दी ही की ध्वनि में मग्न चला जाता है। जहाँ जाना था, वहाँ पहुँच कर पटवारी के समधी से मिला। वह व्यक्ति संदेशा न पाकर बड़ा व्याकुल हुआ। नाई को धमकाया या कुछ कटुवचन कहा ही चाहता था कि एक युक्ति सूझ पड़ी। तनिक देर मौन रहने के पश्चात् बोला—"अच्छा! तुम पटवारी से तो संदेशा ले आए, खूब किया? अब हमारा उत्तर भी ले जाओ। किंतु देखो! जितनी शीघ्र आए हो, उतनी ही शीघ्र लौट जाओ। शावाश!"

नाई—( जी में प्रसन्न होकर ) जो आज्ञा जजमान!

पटवारी के समधी ने एक लकड़ी का शहतीर जिसको उठाना साहस का काम था, दिखाकर नाई को कहा कि यह छोटा शहतीर पटवारी के पास ले जाओ, और उनसे कहना कि "आप के संदेशे का यह उत्तर लाया हूं।"

बिचारे नाई ने सब काम परिश्रम और ईमानदारी से किए, किंतु आरंभ ही में भूल कर जाने का यह दंड मिला कि शहतीर सिर पर उठाए हुए पसीना-पसीना हुए पग-पग पर दम लेते हांपते कांपते लौटना पड़ा।

विज्ञान अत्यंत तीव्र गति से उन्नति की श्रेणी पर गो आन, गो आन, (go on, go on, on, on,) आन, आन, करता चला जाता है। कैसे शौक़ से पग बढ़ा रहा है। On, Science, on! हल्ला शोर! दौड़ जा! चला चल, चल चल! शाबाश!

किंतु हाय! जिसके काम को जा रहा है, उससे मिलकर तो आया होता! रेलों, तारों, तोपों, बिल्लोनों को (जिनमें हवास की खुशियां-विषयानन्द-अभिप्रेत हैं) आनंदघन आत्मा का समधी ठानकर उनकी ओर दौड़ धूप कर रहा है। किंतु कान खोलकर सुनले! इन बाहरी उलझनों, अड़ंगों और झमेलों में संतोष और आनंद नहीं प्राप्त होगा, और देर में चाहे सबेर में (So called civilization) झूठी और अवास्तविक सभ्यता का शहतीर सिर पर उठाकर भारी बोझ के नीचे कठिनता से अपने स्वरूप आत्मा की ओर वापिस लौटना पड़ेगा।

ऐ पृथ्वीतल के नवयुवको! ख़बरदार! तुम्हारा पहला कर्तव्य अपने स्वरूप को पहचानना है। शरीर और नाम के तौक़ (बंधन) को गर्दन से उतार डालो और संसार के बगीचे में हवास [विषयों] के दास बने हुए बोझ लादने के लिये बेगार में आवारा मत फिरो। अपने स्वरूप को पहचान कर सच्चे राज्य को सँभाल कर पत्ते-पत्ते और कण कण में फुलवारी का दृश्य देखते हुए निजी स्वतंत्रता में मस्त विचरण करो। वेदांत तुम्हारे काम-धंधे में गड़बड़ डालना नहीं चाहता, केवल तुम्हारी दृष्टि को बदलना चाहता है। संसार का दफ़्तर तुम्हारे सामने खुला है। [God is no where] इसको [God is now here] [ईश्वर

कहीं नहीं है, संसार ही संसार है ] पढ़ने के स्थान पर God is now here ईश्वर अब यहाँ है, "जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है"—

"न मी गोयम कि अज़ आलम जुदा बाश;
बहर कारे-कि बाशी बा खुदा बाश।

अर्थ—मैं नहीं कहता हूँ कि तू संसार से अलग रहे (वरन् यह प्रेरणा करता हूँ) कि जिस काम में तू रहे ईश्वर के साथ रहे, (अर्थात् ईश्वर का ध्यान मन में रख)

पढ़ो ! वेदांत का प्रयोजन तुम्हारी चोटी मूँड़ना नहीं है; तुम्हारा अंतः करण रंग देना उसका स्वभाव है। हां, यदि तुम्हारे भीतर इतना गाढ़ा रंग चढ़ जाय कि भीतर से फूटकर बाहर निकल आए अर्थात् वैराग्य से कपड़े भी लाल गेरुए बना दे, तो तुम धन्य हो, धन्य हो ! अय अर्थ-शास्त्र (पोलिटिकिल इकानोमी) तुम्हारी चेतना चकरा क्यों रही है वा तुम्हारे होश क्यों उड़ रहे हैं ? घबराओ नहीं, इन वेदांतनिष्ठ साधु लोगों का रहना [Unproductive expenditure of capital] पूंजी का व्यर्थ व्यय नहीं है। आध्यात्मिक अविनश्वर पूँजी का अथाह कोष यह साधु लोग हैं। इनके शुभ जीवन निमित्त पृथ्वी फलवती होती है; इनके अमृत-भरे नयनों के लिये तारे और सूरज चमकते हैं; इनके चरण-कमलों पर वारे जाने के लिये लक्ष्मी तड़पती है। सांसारिक पूँजी के खयाल में मग्न रहने वाले लोगो, क्या तुमको उनका अस्तित्व बुरा मालूम होता है ? डरो मत, और तो और यह साधु परमेश्वर से भी कभी याचना नहीं करने के। शरीर रहे तो अच्छा नहीं तो बला से अभी कट जाय। उनका श्वास लेना, उनका

चलना फिरना प्रकृति के ऊपर सौ सौ एहसान करना है।

स्वर्ग और वैकुंठ के सुखों को कौवे की बीट की तरह तुच्छ समझने वाले यह अभिलाषा रखते हैं कि तुम उनके शिर पर फूलों के स्थान पर राख डाल दो। वह इस भस्म को मस्तक पर धारण कर के प्रेम-भरी दृष्टि के साथ तुम्हारे मन को शांति से भर देंगे। अय पोलिटिकल इकानोमी ( अर्थ शास्त्र के पढ़नेवाले! कुछ ख़बर भी है? यह भगवे कपड़ों में "ॐ" की चित्ताकर्षक ध्वनि उच्च करता हुआ मस्ताना चाल के साथ गली में से कौन निकल गया? निकट जाकर देख। आँखे स्पष्ट कह रही हैं कि सारे संसार का महाराजाधिराज भेस बदले भिक्षा-पात्र हाथ में लिए सैर कर रहा है।

मंग तंग के टुकड़े खाँदे, चाल चलें अमीरी में।
मेरा मन लगा फ़कीरी में।
राँझा जोगीड़ा बन आया॥

न यह चाकर चाक कहींदा, न इस ज़री शौक़ मिहींदा।
न मुश्ताक है दूध दहींदा, न इस भूख पियास कुड़े!
कौन आया पहन लिबास कुड़े!

प्यारे भारतवासियो! अपने प्यारे बच्चों की शिक्षा "डी+ओ+जी=डौग, डौग माने कुत्ता" से आरंभ करने के स्थान पर "जी+ओ+डी=गौड, गौड अर्थात् परमेश्वर रूप ज्ञानियों के उपदेश ॐ से आरंभ कराओ।

अज़ रास्ती अस्त जाय अलिफ़ दरमियाने-"जाँ"।
वाव अज़ कजी हमेशा बुवद दरमियाने-'खूँ'॥

अर्थ—सचाई के कारण से शब्द 'जान' के बीच अलिफ़ का निवास है, और टेढ़ेपन के कारण अक्षर 'वाव' सदैव शब्द 'खून' के मध्य में आता है।

किंतु ऐसा नहीं कर सके, तो लड़कों को कालिज में प्रविष्ट होने से पहले किसी पूर्ण ज्ञानवान् के सत्संग में पूरे साल अथवा कुछ मासों के लिये छोड़ दो। यदि यह भी न हो सका, तो ऐ युनिवर्सिटियों के डिगरी-पाये नवयुवको! अय विलायत से पढ़कर आने वालो! रुपया की नौकरी ग्रहण करने से पहले आओ किसी ब्रह्म विद्या के सच्चे आचार्य की खोज करो, जो न केवल वेदांत के प्रकरण ग्रन्थों (Theology) से ही परिचित हो, बरन् जो स्वयं वेदांत (religion) स्वरूप हो, जिसकी प्रत्येक क्रिया उपनिषद्रूप हो, जिसके रोम-रोम से यह गीत निकल रहा हो—

शृण्वंतु विश्वे अमृतस्य पुत्राः आयेधामानि दिव्यानि तस्थुः
वेदाहमेतम् पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय॥ यजु०

अर्थ—सुनो! हे अमृतपुत्र, दिव्य स्थानों के वासियो! सुनो, मैं ने पाया है, मैं ने पाया है। * * * मैं ने उस अनंत महान पुरुष को जाना है कि जो अंधकार से सूर्य के समान पृथक वा नितान्त परे है, उसी को जानकर मनुष्य मृत्यु पर अधिकार पाता है। यही विधि है मुक्ति पाने की. और कोई मार्ग नहीं, और कोई मार्ग नहीं।

क्या ऐसे ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानवान् महात्मा भारत में नहीं हैं? केवल उन्हीं के लिये नहीं हैं जिन्हें सच्ची खोज नहीं। किसी ऐसे सत्य जीवन का प्राण फूंकने वाले परमहंस के सत्संग के प्रभाव से तुम समस्त आयु द्रव्य के दास नहीं बने रहोगे,

वरन् "दौलत गुलामे-मन शुदो-इक़बाल चाकरम् [संपत्ति मेरी दासी होगई और प्रभुत्व मेरा दास]" का मामला देखोगे। जीवन के बाज़ार में जिस ओर जाओगे आनंद का स्वर (harmony) तुम्हें स्वागत करता हुआ मिलेगा, जिधर दृष्टि को डालोगे,सफलता हाथ मिलाने को विद्यमान होगी। तुम्हारे अधरों (ओष्टों) पर नवीन उत्पन्न भई तरोताज़गी के साथ माधुरी मुस्कान सदैव के लिये उत्पन्न होकर शोभा दिखाएगी, और मस्तक पर ज्ञान का सूर्य सदा के लिये उदय होकर कांति की वर्षा करेगा।

ब्रह्मविद् इव सौम्य ते मुखं भाति। (छांदोग्य०)

अर्थ—हे सौम्य! तेरा मुख ब्रह्मज्ञानी के समान शोभायमान हो रहा है।

हाय मेरे प्राण से बढ़कर प्यारो! तुम्हें कब पता लगेगा कि

हर कमाले कि मा सिवाय-हक़ अस्त।
दर हक़ीक़त ज़वाल मी दानम॥

अगर तन रा नबाशद दिल मुनव्वर ज़ेरे-ख़ाकश कुन।
नबाशद दर शबिस्ताँ इज्ज़ते-फ़ानूसे-ख़ाली रा॥

अर्थ—जो कमाल कि ईश्वर के अतिरिक्त है, उसको वास्तव में मैं ज़वाल निश्चय करता हूं। यदि किसी शरीर का दिल प्रकाशमान नहीं है, तो उसको मिट्टी तले दबादे, क्योंकि ख़ाली फानूस की कमरे में कोई महिमा नहीं होती।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली ने निस्संदेह कुछ लाभ पहुँचाया है, किंतु इसमें परिवर्तन और सुधार की बहुत आवश्यकता है। समस्त धर्मों का प्राण, तत्त्वज्ञान का मुकुट, विज्ञानों का विज्ञान वेदांत ही एक विद्या है जो अज्ञान के भँवर में

डूबने वाले को बचा सकती है। आरंभिक जीवन में जब कि हृदय का क्षेत्र प्रभाव को शीघ्र ग्रहण करने वाला होता है। प्रायः भ्रान्तियां भूलें जो विद्यार्थियों को पुष्टिकर औषधि समझ कर पिलाई जाती हैं, उनके रक्त में दोष उत्पन्न कर देती हैं, और उनके जीवन को कड़वा बनाए रखती हैं। जैसे वर्तमान शिक्षा-विभाग की पुस्तकों के निम्नलिखित पद्य कि—

खुबसे-नफ़्स न गर्दद बसालहा मालूम।
सगे रा लुक़मए हरगिज़ फरामोश।
न गर्दद गर ज़नी सद नौबतिश संग॥
वगर उमरे नवाज़ी सिफलए-रा।
बकमतर चीज़े आयद बा तो दर जंग॥

अर्थ—अहंकार का नीचपन बरसों नहीं मालूम होता। कुत्ता ग्रास को कदापि नहीं भूलता है, चाहे सौ बेर उसको तू पत्थर मारे। और यदि समस्त आयु तू कमीने मनुष्य पर दया करे, तो वह थोड़ी सी बात पर तेरे साथ लड़ाई के लिये तप्पर हो जायगा।

बर तवाज़ा हाय-दुश्मन तकिया कर्दन अब्लही अस्त।
पायबोसे-सैल अज़ पा अफगनद दीवार रा॥
न दानस्त आं कि रहमत कर्द बर मार।
कि आं जुलम अस्त बर फरजंदे-आदम॥
संगीन दिल सत आंकि बजाहिर मुलायमस्त।
पिनहाँ दरूने-पम्बा निगर पम्बा दाना रा॥

अर्थ—शत्रु के मान-सत्कार पर भरोसा करना मूर्खता है; क्योंकि नदी का चरण-तल छूना दीवार को गिरा देता है। जिस व्यक्ति ने सांप पर कृपा की, उसने यह नहीं जाना कि मनुष्य-जाति पर (यह कृपा) अत्याचार है। जो कि

देखने में सुकोमल स्वभाव है, वह भीतर से कठोर हृदय है, रुई के भीतर बिनौले को छिपा हुआ देखो।

ऐसे उपदेशों से मनुष्य का हृदय संशय और दुर्भावों का घर बन जाता है और उसकी आंखों में ऐसा रोग समा जाता है कि जिधर देखता है मूर्तिमान शत्रुता से सामना करना पड़ता है। यद्यपि वास्तव में इसके अपने दुर्भाव और खटके ही भेंट करनेवालों के अंध-हृदय हो जाने का कारण होते हैं। वेदांत का यह अनुशासन है कि 'नीच' शत्रु, पाषाण हृदय, पिशाच कोई है ही नहीं, मेरा पवित्र स्वरूप ही समस्त रूपों में प्रति समय शोभायमान है, अपने आपका कोई अनिष्ट नहीं करता. अतः मेरा अनिष्ट करनेवाला कौन है? अन्य तो कभी विचार-गर्भ में भी उपस्थित नहीं हुआ। अविश्वास त्याग दो भेद दृष्टि वा द्वैत दृष्टि का पाप तोड़ो, झूठ से मुँह मोड़ो।

यदि ऊपर से संखिया की भांति कोई व्यक्ति मेरे निकट आया है, तो अवश्य किसी कुष्ट को दूर करेगा। इस विष की आवश्यकता ही थी। यदि नश्तर के स्पष्ट ढंग में मिला है, तो अवश्य विक्षिप्तता (उन्माद) की नाड़ी की फ़स्द खोलकर मेरे स्वास्थ्य का कारण होगा। धन्य है। यदि काँटेवाला अस्तुरा बनकर आया है, तो अवश्य मेरा ख़त ही बनाएगा, अच्छा हुआ। सब शरीर मेरे हैं, मेरे अपने आप से अवश्य मुझ को हानि का भय नहीं। बाहरी विरोध वास्तविक नहीं, केवल देखने मात्र हैं, जैसे प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि कभी मुझ में बाल्यावस्था थी, फिर युवावस्था बीती, आगे बुढ़ापा बीत जायगा, किंतु बाल्यावस्था, जवानी बुढ़ापे आदि के होते हुए भी मेरा स्वरूप वही का वही

रहा है;परिवर्त्तन (विकारों) के साक्षी मेरे स्वरूप में कुछ भी अंतर नहीं आया। ये सब सामयिक विकार केवल दिखावा मात्र थे, वास्तविक नहीं थे। ठीक इसी प्रकार मनुष्यों के पारस्परिक भेद भी केवल दिखाई ही दिखाई देते हैं, वस्तुतः नहीं।

विज्ञान बताता है कि सर्दी और गरमी दोनों ताप के नाम हैं, केवल परिमाण (दर्जों) का अंतर है। बर्फ़ को ठंढा कहते हैं, किंतु बर्फ़ की ठंढ भी ताप का एक परिमाण (दर्जा) है। भाप को गरम कहते हैं, वह भी ताप का आविर्भाव है। बर्फ़ की ठंढ यदि ताप ही का तमाशा न होती, तो पिघलती हुई बर्फ़ को 'बिंदु सैंटी ग्रेड' से बहुत नीचे उतार सकना कोई अर्थ न रखता।

अँधेरा और उजाला भी एक ही प्रकाश के अलग-अलग दरजों के नाम रक्खे हुए हैं। रात का समय मनुष्य के लिये अँधेरा है, किंतु बिल्ली, चीता आदि के लिये उजाला है।

इसी प्रकार बल और दुर्बलता भी एक ही अवस्था के परिमाणों के नाम हैं अज्ञान और ज्ञान भी एक दूसरे के विरोधी वास्तव में नहीं। पांच वर्ष का बालक मूर्ख और वही बीस वर्ष की आयु में एम्० ए० होकर बुद्धिमान (विद्वान) कहलाता है। फिर यही एक [Lybtniz]लाइबटनिज के सामने पाठशाले का शिशु (मूर्ख) गिना जायगा। वैसे ही वेदांत दिखाता है कि ऐ अपने आपको भला कहने वाले ! जब बुरा मनुष्य दिखाई पड़े तो तू निश्चयतः जान ले कि वह तेरा ही छुटपन का नन्हा और प्यारा अपना आप है। घृणा क्यों ? दस साल में तेरी दशा और की और हो जानी है, तब क्या इस समय के अपने आपको तू व्यर्थ आदमी, जो किसी काम का न हो, कहना स्वीकार

करेगा? नहीं। अतएव इवोल्यूशन (विकास) की नसेनी सीढ़ी) के अलग अलग सोपानों पर चलने वाले महाशयों को बुरा या भला होने का दोष मत लगा। उनकी निजी एकता [प्रत्यभिज्ञा] को हार्दिक दृष्टि से देखकर प्रेम का प्याला पान कर।

कुछ लोगों का यह खयाल है कि अपने विरोधियों को नीचा दिखाना ही अपनी प्रतिष्ठा (honour, self-respect) को स्थिर रखना है। ऐसे व्यक्तियों को वेदांत यह सम्मति देता है कि 'इस प्रकार के विचारों को त्याग दो, अन्यथा नीचा देखोगे" बदला लेना, दंड देना और ईर्षाभाव की पुष्टि करना वह गिद्ध है जो स्पष्ट बता रहा है कि तुम्हारे भीतर अज्ञानता का शव सड़ रहा है। बिना शव के क्रोध का गिद्ध कभी आता ही नहीं। स्वप्न में किसी ने गाली दी, उसको अपने से पृथक मानकर बदला लेने के लिये तत्पर होना स्पष्ट जतला रहा है कि तुम स्वयं अज्ञानता की नींद में सोए हुए हो, अविद्या के वश में हो, अतः बदले का खयाल तो तुम्हारी सच्ची प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिलाता है।

कुछ लोग अपनी चतुरता और धोका देने की योग्यता पर लट्टू होते हैं धूर्त शिरोमणि होने का अभिमान करते हैं, टेढ़ी तिर्छी चालबाज़ी से अपना मतलब बनाने को बड़ी बात समझते हैं। उनकी करुणा करने योग्य दशा पर द्रवित होकर वेदांत यह अटल बात सुनाता है, कि देर में चाहें सबेर में, कड़ुए अनुभव द्वारा, मारे तमाचों के गालें लाल करके माता प्रकृति उन्हें यह पाठ अवश्य पढ़ावेगी कि "धोकाबाज केवल अपने आपको धोका दे सकता है अन्ततः अन्य को धोका देना बिलकुल असंभव है।" अग्नि चाहे ताप को कभी छोड़ भी दे, किंतु कपट स्वयं कपटी को भली

भांति सेंके (तपाये वा दुःखाये) बिना कदापि नहीं छोड़ सकता।

व्यावहारिक द्वैतबाज़ (अर्थात् मक्कार या कोई और पाप करनेवाला) अपनी चाल से एकता के नियम को भंग करता है, सच्चाई के सूर्य (अद्वैत) की आंखों में लवण डालना चाहता है। ऐसे के लिये कहीं त्राण नहीं। एकता के नियम को तोड़ना पाप है। और नानत्व में एकत्व (Unity in plurality) देखना, फिर धीरे-धीरे नानत्व के ख्याल का नितान्त नाश कर देना मानवी जीवन की सर्वोत्तम जांच है। जैसे साधारण मनुष्य को पत्थर, गाय, भैंस दृष्टिगोचर होती है, उसी ज़ोर से आनंदघन अद्वैत-स्वरूप का सब में अनुभव करना अमर होना है।

सायंकाल के समय वाटिका के कोने से पूर्ण प्रेम-भरे स्वर में इस भजन के गाने की ध्वनि आ रही है—

मैं अपने राम को रिझाऊं।
जंगल जाऊँ, वृक्ष न छेड़ूं, न काइ डार सताऊं।
पात पात में है अविनाशी, वाही में दरस कराऊं॥ मैं०
औषध खाऊं, न बूटी लाऊं, न कोई वैद बुलाऊं।
पूर्ण वैद मिले अविनाशी, ताही को नबज़ दिखाऊं॥ मैं०
मैं अपने राम को रिझाऊं—आदि आदि।

गानेवाला कौन है?—भक्त कबीर।

एक नवयुवक (रामदास) चित्त में खुभजानेवाला गाना सुनकर वैराग्य से भर आया। नेत्रों में जल भर कर कबीर जी के चरणों पर शिर रख दिया और हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि "आप सब शक्ति रखते हैं, मुझे भी भगवान्

के दर्शन कराओ"। कबीर जी रामदास के सच्चे भक्ति-भाव को देखकर इनकार न कर सके, कुछ देर बाद परसों दर्शन कराने का वादा कर लिया और तैयारी के लिये सामान पहुँचाने के लिये भी रामदास को खूब समझा बुझा दिया।

दूसरे दिन रामदास ने खुशी खुशी अपनी संपत्ति वेचकर उसके चावल, खांड़, घी, मैदा, दूध आदि खरीद किए। नियत दिन को बहुत उत्तम भोजन तैयार किए गए, और साधु लोग निमंत्रित किए गए। इधर भांति भांति के स्वादिष्ट भोजन तैयार पड़े हैं, उधर महात्मा लोग आ आकर अपने-अपने भजन-पाठ में लगे हैं। रामदास परम प्रेम और भक्ति के साथ एकांत में पूजा कर रहा है, इस आशा पर कि अभी भगवान् के दर्शन हुए कि हुए।

रामदास को दर्शन होने के बाद सब महात्मा पंगत में सम्मिलित होंगे। सब लोग आँख फाड़-फाड़कर उत्तम मुहूर्त्त के ध्यान में हैं।

लो दोपहर ढल गई, रामदास को अभीतक दर्शन नहीं हुए, तीसरा पहर होगया, दर्शन नहीं हुए।

कुछ नवयुवक साधुजनों की अँतड़ियां परमेश्वर को कुछ का कुछ कहने लगीं कि हाय! हमारे उदर और सुस्वादु पदार्थों के मध्य में व्यवधान ( partition ) क्यों बना है! कुछ पर निराशा छा गई, कुछ कबीर को दोष देने लगे, कुछ रामदास को पागल समझने लगे कि किस बात पर रीझ पड़ा। कुछ प्रेमी इस आनंद भरे विचार से बगलें बजाते थे कि कदाचित् रामदास के चरणों की कृपा से हमें भी दर्शन प्राप्त हों। निदान आशा और प्रतीक्षा में प्रत्येक का—'चूँ गोशे-रोज़ादार बर अल्लाहु अकबर अस्त" रोजा

खोलने के लिये अल्लाह अकबर की बाँग सुनने पर रोज़ादार के कान लगे हुए का सा मामला हो रहा था।

इन लोगों को तो अपने-अपने विचारों में लीन छोड़िए, उधर भोजन आदि की सुध लीजिए। पवित्र रसोई (चौके) में यह क्या घमसान मचा है इस जगह यह भैंस किधर से आगई ? खीर के बर्तन औंधे पड़े हैं, कड़ाहों में हलुवे को भैंस का मुँह लगा हुआ है, मालपुए सब जूठे हैं, दाल वाले के देगचे फूट रहे हैं, भैंस ने सींगों से चूल्हे भी तोड़ दिए हैं, सारे स्थान को जहां-तहां खुरों से खराब कर दिया है, जगह जगह गोबर कर दिया है, अब भैंस थूथनी उठा कर अड़ाने लगी।

आशा के विरुद्ध भोजन बनाने के कमरे में यह आवाज़ सुनकर सब साधु चौंक पड़े। दिन भर की भूख के कारण आकुल चित्त तो पहले ही हो रहे थे, खाने पीने पर साफ चौका और सब आशाओं के शिर पानी फिरता देख उनकी क्रोधाग्नि आवश्यकता से अधिक भड़क उठी, और तमोगुण की उन्नति अकथनीय।

उधर से रामदास भी पागल की तरह लठ हाथ में लिए आगया। साधुओं ने भैंस को घेर रक्खा और रामदास ने भैंस की गत बनानी आरंभ की। मार-मार कर सब खाया-पिया निकाल दिया।......

कोई कबीर जी पर फबतियाँ गढ़ रहा था, कोई ठेने-ठप्पे ( उलाहने ) सुना रहा था, कोई तेज़ और कड़वे वाक्य चुस्त कर रहा था।

भैंस ज़ख़्मी होकर रक्तरंजित शरीर लिए लँगड़ाती-लँगड़ाती दुःखभरी ध्वनिसे फरयाद करती कठिनता से अपने प्राण

बचाकर बाग के उस कोने की ओर आ निकली जहां कबीर ठहरा हुआ था। पीछे-पीछे रामदास और साधु लोग भी कबीर जी की खूब खबर लेने को उसी ओर आ रहे थे। आकर क्या देखते हैं कि मारे सहानुभूति के भक्त कबीर भैंस के गले लिपटकर बिह्वल रो रहा है—"हे भगवन्! हाय! आपको आज वह चोटें आईं जो रावण से लड़ते समय भी नहीं आई थीं। हाय! आपको आज वह कष्ट सहना पड़ा जो कंस से संग्राम करते समय भी नहीं सहना पड़ा था। हाय! आपको आज............"

कबीर भक्त के रोने-धोने ने समस्त दर्शकों की दशा यकायक बदल दी। जैसे आग के साथ जो वस्तु छू जाती है, आग हो जाती है, वैसे उस अवसर पर कबीर के प्रभाव से रामदास आदि के अंतःकरण ऐसे निर्मल हो गए कि आनंद-घन अद्वैतरूप के अतिरिक्त कुछ न रहा। द्वैत भावना एक-दम मिट गई। दुई का पर्दा उठगया। हर स्थान पर हर वस्तु में एक ही आत्मा पाया—

मन ऐसो निर्मल भयो जैसे गंगा नीर।
पीछे २ हर फिरे कहत कबीर कबीर॥

दुःख और शोक, विषयों की भावनाएँ, शरीर की सब कामनाएँ दूर होगईं। अपना एक शरीर होने के स्थान पर समस्त शरीर ख़ास अपना आप दिखाइ पड़ने लगे, और यह ख़ास अपना आप संसार का सुख स्वयं राम ही था। विचित्र दर्शन हैं कि दर्शन करनेवाला और दर्शन देनेवाला दो नहीं रहते। अपने आप तमाशा और अपने आप तमाशा देखनेवाला, आश्चर्य है। हर (परमेश्वर) का यही दर्शन है कि हर (पशु, पक्षी, मनुष्य, संसार सब) में ही हूँ।

ऐ सांसारिक विद्या के विद्वान् ! क्या तू संसार वाटिका के अंगूरों के पत्ते गिनने, बीज जाँचने, रस तोलने और चाकू से उसके टुकड़े काटने में ( Botanists ) वनस्पति-विद्या के ज्ञाताओं की भांति अपनी आयु खो देगा ? इन चित्र-विचित्र अंगूरों में अंगूर रस को एक बेर तो स्वाद चख, फिर चाट लग ही जायगी ।—

निगाहे-यार जिस दिन से निगाहों में समाई है;
मेरी आँखों में काँटा-सा खटकता कुल ज़माना है ।

यह तेज़ अंगूर की पुत्री ( प्रेम मद ) मुंह को लगी हुई तुझे अपने प्यारे नख-शिख सुंदर के घूँघट को हटाने की हिम्मत देगी । इसी उत्तम मदिरा ने परमहंस रामकृष्ण को भंगियों की झोंपड़ी में जगदंबा काली के दर्शन कराए । अपने शिर के लंबे बालों से झोंपड़ी का······साफ करने लगे । इसी अद्वैत रूपी मदिरा की तरंग में महाप्रभु चैतन्य गौरांग ने अपने शरीर को जगदंबा पाया, और मामता के मारे जो सामने आया उसको झट गोद में उठाया । हाय ! हाय रे ! मातृप्रेम ! गाय की भांति अपने बच्चों को चाटने लगे ।

ऐ चमड़े तक रह जानेवाले विज्ञान ! दूर हो जा मेरी आँखों के सामने से ऐ फिलासोफी की ओट ! हट जा मेरे आगे से । मैं देखूं तो सही, यह न्याय और व्याकरण का प्रोफ़ेसर ( चैतन्य ) कहां भागा जाता है । ऐ लो ! कृष्ण के गले जा लिपटा और प्रेम से विह्वल रो रहा है ।

कृष्ण के ! यह कृष्ण कहां है ?—यह तो एक नामी बदमाश कलालख़ाना से शराब पी कर जा रहा था ।

ऐ अपने भीतर बदमाश रखनेवाली भेदबुद्धि-युक्त द्वैत दृष्टि! भिंगेपन को हटा। उपनिषद् के हस्पताल में आंखें बनवा। फिर तू इस मामले में सम्मति देने के योग्य होगी. अभी तो अपने बदमाश की दशा देख! वह अपने प्रत्येक अंदाज़ से, प्रत्येक कथनी और करनी से स्पष्ट बोल रहा है कि "मैं कृष्ण हूँ". उसका बदमाशपन तभी तक था जब तक चैतन्य की तत्त्वदर्शी दृष्टि उसपर नहीं पड़ी थी। सच्चे मसीह ने एक ही दृष्टि में पाप के कोढ़ को सदा के लिये हटा दिया। अनाथ पापी से त्रिलोकी नाथ कृष्ण बना दिया

कुरबाने-निगाहे-तो शवम बाज निगाहे।
कुरबाने-निगाहे-तो शवम बाज़ निगाहे॥

प्रवाहैरश्रूणां नवजलदकोटी इव दृशौ,
दधानं प्रेमर्द्ध्यापरमपद कोटोः प्रहसनम्।
घमंतं माधुर्य्यैरमृतनिधि कोटीरिव तनु
च्छटाभिस्तं वंदे हरिमहह संन्यास कपटम्।

अर्थ—वह जिसकी आंखें नवीन मेघों की भांति लगातार पानी बरसा रही हैं, जिसके प्रेम का प्रकाश लोगों के मनों में स्वर्ग और देवलोक से घृणा उत्पन्न करा रहा है, सौंदर्य और माधुर्य के कारण जिसके शरीर से अमृत का समुद्र निकल रहा है, यह कोई और नहीं है, अहाहा! संन्यास के वेष में परमेश्वर ही है। जय! जय!! जय!!!

वह देखना, इस वन में यह निकम्मी झोंपड़ी किसने बना रक्खी है? आओ, देखें तो सही!

अजी जाने भी दो, यह तो किसी बहुत नीच जाति की है। भीतर चले गए, तो फिर नहाना पड़ेगा। तुम भी तो

किस बात के पीछे पड़े हो। अब छोड़ो भी। खैर राम के मारे-बांधे झोपड़ी में घुसते हैं। ऐं! यह कौन ? सांस दबा कर रह जाते हैं।

पाठक समझे ? इस झोंपड़ी में कौन बैठा है ? पहचानते हो या नहीं ? कौन हिंदू या मुसलमान है जिसने दसहरे के दिनों "बोल राजा रामचंद्र की जय" नहीं सुनी होगी, और अति सुन्दर सजावट वाली पालकी में सवार महाराज के दर्शन नहीं किए होंगे ? वही राजा रामचंद्र अब इस फटी पुरानी चटाई पर सीता जी के सहित बैठे हैं। क्या उदास हैं ?

उदास कैसे ? महा आनंदित हैं।

चटाई से नीचे भूमि पर एक नीच जाति की भिल्लनी (शबरी) बैठी है। उससे घुल घुल के कैसी बातें कर रहे हैं। भीलनी बेरों की ऋतु में जंगल से बेर चुनकर लाई थी। उसने सबको चख चीख कर मीठे अलग रख दिए थे और शेष सब खागई थी, वह भीलनी के चखे हुए और इस समय सूखे हुये मीठे बेर हाथ बढ़ा कर मीठी मीठी वाणी से मांग रहे हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम राजा रामचंद्र जी की यह दशा देख कर भी भारतवर्ष में साम्प्रदायिक झगड़े और पक्षपात की गंध शेष रह जायगी ?

भीलनी का टूटा-फूटा घर देख कर चित्त कदाचित् उकता गया होगा। आओ, अब दिल्ली की सैर कराएँ, ब्राह्मणों और राजाओं महाराजाओं का प्रभुत्व दिखाएँ। यज्ञ की धूम-धाम में कहीं साथ न छोड़ देना। आहा ! यह

क्या ? यह पैर किन कोमल अँगुलियों ने पकड़ लिए ? यह चरण कौन धोने लगा ?

पाठक, कुछ पता लगा ? पृथ्वीमंडल के वज्रबाहु महाराजाधिराज इधर जिसके श्री चरणों की रज प्राप्त करने के लिये वैसे ही तड़पते थे जैसे कि उधर चन्द्र मुख और चान्दीवत सुन्दर देहधारी सुंदरियां उसके अधरामृत के चुंबन के लिये; वही कृष्ण जिसकी विश्वविमोहिनी वंशी की मधुर ध्वनि इधर प्रेमियों के दिलों में वैसे ही चुटकियां भरती है, जैसी कि उधर उसकी गीता बुद्धिमानों को गुदगुदाती है; वही श्रीकृष्णचंद्र महाराज हर छोटे बड़े के पैर धोने की ड्यूटी ( कर्तव्य ) दिली उमंग से अंगीकार किए हुए हैं; उसी ने पैर पकड़े थे। कृष्ण के प्रेम की जब यह दशा है, तो भारतवासियो ! तुम्हारा क्या कर्तव्य है ? तुम्हीं बताओ।

पिदरम् रौज़ए-रिज़वाँ बदो गंदुम ब फ़रोख़्त।
नाखलफ़ बाशम अगर मन बजवे न फ़रोशम॥

अर्थ—मेरे पिता ने स्वर्ग की फुलवारी को दो दाने गेहूँ के लेकर बेच दिया, मैं असल का नहीं हूँ। [ अर्थात् मैं नाखलफ़ हूँगा ] यदि उसे एक जौ के बदले न बेच दूँ।

**प्रश्न**—क्यों महाराज ! जब तक वेदांत के रंग नहीं चढ़े थे, तो बिलकुल सादे वस्त्र पहनते थे, अब त्याग वैराग्य की विद्या आने पर शिर से पैर तक रेशमी वस्त्र तन की शोभा बढ़ाने लगे। और देखो, दरज़ी दो रज़ाइयां कैसी चमा चम लाया है, एक चमकीले हरे रेशम की है, दूसरी अत्यन्त सुंदर लाल रेशम की है।

स्त्री सती होते समय पूरा शृंगार लगाती है, आंखों में सुरमा, ओठों पर पान की लाली, गले में हार, निदान सब प्रकार भूषणों से सुसज्जित होती है; पर इस तैयारी के क्या अर्थ ? बस अभी अभी आग में कूदेगी।

महाशय ! इस महाराज की सजावट बनावट तो सती का शृंगार है। अभी एक व्यक्ति सिद्ध कर देता है कि रज़ाइयों की लागत लगभग साठ रुपया जो दीगई तो बिलकुल अंधेर किया; यथार्थ मूल्य कठिनता से लगभग ३०) होना चाहिए, दरज़ी और बज़ाज़ खा गए। महाराज (आंख में आंसू भरकर) "हाय बिलकुल तुच्छ रुपया के लिए, तीस या साठ या सौ रुपया के लिये, मैं अपनी तत्त्वदृष्टि को जान बूझकर फोड़ लूँ? परमेश्वर को दोष लगाऊँ ? अपने आप से अविश्वासी हो जाऊँ ? प्रेम के नियम को तोड़ दूँ ? कैसा रुपया ? कहां का दर्ज़ी ? ओं ओं ओं······। अत्यन्त दुःख और दर्द के साथ ये वाक्य निकले थे कि उपदेष्ट्री कांप उठा, पानी पानी हो गया। इस ज्योतियों के ज्योति स्वरूपमय भाव ने अपने आप बज़ाज़ और दरज़ी के दिलों में प्रविष्ट होकर उन्हें जगा दिया। दोनों ने आकर अपने आप अपराधों को स्वीकार किया, और पश्चात्ताप किया।

क्या जो वस्तु परमार्थ में ठीक उतरे वह व्यवहार में कभी धोका दे सकती है ? कदापि नहीं। युक्ति में दुरुस्त और व्यवहार में अयुक्त, [दांत] खाने को और दिखाने को और, न्याय [ तर्क शास्त्र ] इस का खंडन करता है।

वह विज्ञान जो एक ही चपत से द्वैतवाद का ( जो ईश्वर को अपने से पृथक् बताता है ) मुहँ फेर देता है, दांत बाहर निकाल देता है; वह विज्ञान जो भयानक पहाड़ की भांति

द्वैत के सिद्धांत पर टूटकर उसे चीनी के बर्तनों की तरह चिकनाचूर कर देता है; वह विज्ञान अद्वैत-सिद्धांत के दरवाज़े की बुहारी करता है। ऐसे ही वेदों का प्रत्येक पृष्ठ इस अद्वैत के सौंदर्य का प्रकट करने वाला है. यह अद्वैत [एकता] का सिद्धांत परमार्थ की उच्च कोटि पर बिलकुल सच है, नहीं नहीं, सत्य स्वयं है; और यही अद्वैत-सिद्धांत व्यवहार की कोटि पर निरंतर प्रेम बनकर प्रकट होता है, व्यावहारिक जीवन में सच्ची प्रीति के नाम में प्रकट होता है, कारोबार के बाज़ार में समान प्रेम का चोला पहन कर स्पष्ट होता है; अतः यह अद्वैत सिद्धांत जो वस्तुतः प्रकाश स्वरूप है, व्यवहार में प्रीति स्वरूप बना हुआ हमें किस प्रकार धोका दे सकता है?

भेड़िया, सांप, बिच्छू आदि जिनको पीड़क ( मूज़ी ) प्राणी माना गया है। यदि हमारे चित्त में इन के लिये अत्यन्त प्रेम होगा, तो क्या यह हमें न काटेंगे? हां, नहीं काटेंगे।—

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। [योगदर्शन]

अर्थ—अहिंसा के दृढ़ता पूर्वक स्थापित हो जाने से आसपास भी वैर नहीं फड़क सकता है।

यके दीदम अज़ अर्सए-रोदबार।
कि पेश आमदम बर पलंगे-सवार॥
चुनाँ हौल ज़ाँ हाल बर मन निशस्त।
कि तरसीदनम् पाये-रफ़्तन बबस्त॥
तबस्सुम कुनां दस्त बरलब गिरिफत।
कि सादी मदार आंचे दीदी शिगिफत॥
तो हम गर्दन अज़ हुक्मे-दावर मपेच।
कि गर्दन न पेचद ज़े हुक्मे-तो हेच॥

चरा अहल दावा बदीं नगरवंद।
कि अब्दाल दर आबो-आतश रवंद॥

अर्थ—रोदबार के मैदान में मैं ने एक मनुष्य को देखा कि वह चीते पर सवार होकर मेरे पास आया। उस दशा को देखकर मुझ पर ऐसा भय छा गया कि भय ने मेरे चलने का पांव बंद कर दिया। उसने मुस्कराते हुए होंठ [ओष्ठ] पर हाथ रक्खा ( अर्थात् आश्चर्य करने लगा) कि ऐ सादी ! जो कुछ तू ने देखा, इसका आश्चर्य मत कर, ईश्वर की आज्ञा से तू गर्दन मत फेर जिस में तेरी आज्ञा से कोई गर्दन न फेरे। जो लोग ( ऐसी घटनाओं के न होने का ) दावा करते हैं वह क्यों नहीं देखते कि अब्दाल [महापुरुष] पानी और आग में चले जाते हैं।

परोपकार मूर्ति दुर्गा-माता नरसिंह की पीठ पर क्यों काठी न डालेगी ? सतोगुण के पुतले विष्णु के लिये महा विषधर शेष-नाग नर्म शय्या का काम देता है, और अपने विषैले फनों को उस प्रसन्नात्मा की छतरी बनाता है। तीक्ष्ण और उन्मत्त सांप वरदाता शिव जी के आभूषण बने हुए हैं, और प्रेम से व्यालभूषण के चहुँ ओर लिपट कर शांति के प्रभाव को प्रमाणित कर रहे हैं।

**अँगरेज़ी-पठित** जिसको श्री गंगा की शिला पर बिठाया था ( घड़ी देखकर )—थैंक यू ! थैंक यू !! ( आप को धन्यवाद देता हूँ ), आप ने बड़ी कृपा की, कैसे-कैसे सब्ज़ बाग़ दिखाए, किंतु मुझे तो ठंढी हवा में बैठे-बैठे जुकाम लग चला है, क्षमा कीजिएगा, आज्ञा माँगता हूँ।

**राम**—अच्छा, तशरीफ़ ले जाइएगा।

अँगरेज़ी-पठित उठकर खड़ा होता है।

**राम**—श्री गंगा में उसकी छाया की ओर संकेत कर के कहते हैं—तनिक खड़े-खड़े इधर गंगा में झाँकना, यह आपका निकट का नातेदार (relation) रूप और आकृति में तो बिलकुल आप के समान है, किंतु यह क्या? घड़ी इसने कोट के दाहिने ओर लटका रक्खी है, यद्यपि जेंटिल-मैन को आपकी तरह बाईं पार्श्व [ओर]रखनी चाहिए;और देखो! आप के और इसके पांव तो इकट्ठे हैं, किंतु आपका क़द ऊपर को बढ़ रहा है और इसका क़द नीचे को फैल रहा है। यह ऐंटीपोडीज़ (antipodes) ऐसे निकट क्यों कर आगए?

यह कहकर राम खड़ा हुआ, और बातें करते करते दोनों श्री गंगा के किनारे टहलने लगे।

**राम**—आप स्वाधीन हैं यह छाया अस्वाधीन, आप बुद्धिमान् हैं, यह अबुद्धिमान्—

अक्से-गुल में रंग है गुल का व लेकिन बू नहीं।

श्री गंगा में जो महाशय (जेंटिलमैन) देखा है, वह प्रत्येक बात में उल्टा ही है। इसका दायाँ-बायाँ है और बायाँ दायाँ है। इस के पैर ऊपर को हैं और सर नीचे को। लहरों पर सारा शरीर अस्थिर और चंचल है। पर जब उस छाया के पैर से ऊपर चढ़कर देखा, तो असली बाबू साहब के पांव पाए। फिर तो दायाँ दायाँ ही था और बायाँ बायाँ ही। सिर ऊपर ही को था और शरीर भी कंपित और क्षुब्ध नहीं था। अच्छे भले निष्कंप असली मनुष्य से सामना पड़ा।

अब देखिए, जड़जगत्, वनस्पतिजगत्, और प्राणिजगत् माया (प्रकृति रूपी नदी के दर्जे और मंज़िलें हैं। प्रकृति के नियम के अनुसार इन में पुरुष (चैतन्य) का प्रतिबिंब पड़ना ही चाहिए। विकास के लिये (अर्थात् ऊपर चढ़ने के लिये सिर को नीचे और पैर को ऊपर रखना पड़ेगा। क्षुब्ध और चंचल छाया उन्नति और उच्चता को केवल योंही पा सकती है कि संकल्प विकल्प-युक्त रूप और विषमता-युक्त शैली से झगड़ा-बखेड़ा करे। अतः शांति और प्रेम वाले रंग-ढंग तथा शैली-प्रथा जो असली पुरुष चैतन्य की पूर्व दशा-प्राप्ति (restoration) के निमित्त आवश्यक है उसके विरुद्ध वनस्पति वर्ग और पशुओं में उल्टी रीति (लड़ाई झगड़ा) ही विकास का द्वार ठहरता है।

अज्ञानी जीव के शरीर में वास्तविक पुरुष [ चैतन्य ] के पैर और उल्टी छाया [प्रतिबिम्ब] के पैर आ मिलते हैं। अब मनुष्य की निजी महिमा की स्थिति [ अर्थात् उन्नति और विकास का कारण] वह नहीं रहेगी, जो पशु आदि के शरीरों में उल्टी छाया की उन्नति का कारण थी। लड़ाई टंटा मनुष्य के शरीर में आकर उसको ऊपर नहीं चढ़ाएगा, वरन् बंदरों, लंगूरों, और भेड़ियों आदि का सहचर और सखा बनाएगा। मनुष्य-देह में आकर इस पुरुष को शांति, प्रेम और मैत्री का ढंग बर्तकर अपना असली स्वरूप ज्यों का त्यों कर लेना शोभा देता है। अपने सच्चे शिर को सँभाल लेना ही आवश्यक होता है, चंचल छाया से अलग हो जाना ही उचित है, माया की लहरों से स्वतंत्र होकर तरंगें मारना ही आवश्यक है, भ्रांति से छुटकारा पाना ही अनिवार्य है, अज्ञान की दासत्व से मुक्ति पाना ही उचित है।

आख्यायिकाओं का उल्लेख कर देना पर्याप्त है। उच्च पदों पर नियुक्त बाबू लोग नए सिरे से परीक्षा स्थानों में सुपरिंटेंडेंटों के निरीक्षण के नीचे लेखनी दौड़ाते हैं। बाहर से कोई शब्द चार या पांच सेकंड तक आता रहा। स्वप्न में एक लंबी-चौड़ी घटना तैयार हो गई जिसने इस शब्द को अत्यंत उचित समय पर रख दिया।

स्वप्न में कई बेर खूब उड़, क्या पक्षियों के जन्म वाला स्वभाव फिर उदय हो आया? यह दशा स्वप्नावस्था के 'समय' की है।

(३) स्वप्न की वार्तालाप भी बड़े आनंद की होती है। बुद्धि हमारी इच्छानुसार होती है। गणित के अत्यंत कठिन प्रश्न कई बेर स्वप्न में हल हो गए, किंतु उठकर देखा तो प्रक्रिया में भूल पाई। स्वप्न में फड़कती हुई ग़ज़लें लिखीं, किंतु जागने पर मालूम हुआ कि शेरों में सक्ता पड़ता है. मात्रा भंग हैं विचार भद्दे हैं; निदान स्वप्नावस्था का 'मनुष्य' स्वप्न की दशा में विचित्र ढुलमुल स्वभाव रखता है।

ऐ जागने वाले! ध्यान से देख, जागृत अवस्था का स्वप्न के साथ क्या संबंध है, नींद कैसी अत्यंत आवश्यक है. रस्सी से बँधी हुई बुलबुल इधर-उधर झपट कर, उछल कूदकर, दौड़ फांद कर, अंततःअपने अड्डे खूँटी पर आ बैठती है; वैसे ही जागृत अवस्था में मन और इंद्रिय शोभा देखते हैं, चुहल पुहल के आनंद लूटते हैं, पर अंततःथक हार कर अपने स्वप्न के निवास स्थान में आकर आराम करते हैं।

यदा वै पुरुषः स्वपिति प्राणं तर्हि वागप्येति प्राणं चक्षुः

प्राणं मनः प्राणं श्रोत्रं। स यदा प्रबुध्यते प्राणादेवाधि पुनर्जायंते। ( शतपथ ब्राह्मण )

अर्थ—जब मनुष्य सोता है, वाणी प्राण में लय हो जाती है, दृष्टि प्राण में, मन प्राण में, श्रोत्र प्राण में; और जब वह जागता है तो प्राण ही से यह सब उत्पन्न हो आते हैं।

निगाह हरजा रवद आख़िर ब मज़गाँ बाज़ मी गर्दद।
कि आज़ादी गिरफ़्तारी अस्त मुर्गे-रिश्ता बरपा रा॥

अर्थ—दृष्टि जिस जगह भी जाती है, अंततः वह पलकों की ओर लौट आती है, क्योंकि पांव से बँधे हुए मुर्ग़ के लिये स्वतंत्रता भी बंधन है।

निस्संदेह स्वप्न से जागृति वैसे ही प्रकट होती है, जैसे सबेरे में से दोपहर प्रकट हो आती है, जैसे नन्हें पौदे में से एक बहुत बड़े फैलाव का पेड़ ( gigantic tree )। क्यों जी, बचपन की अवस्था भी एक स्वप्न का समय ही तो होता है, जिस में युवापन की जाग्रत अवस्था क्रमशः प्रकट होती जाती है। जाग्रत् अवस्था की जड़ अनुभव के मंत्रित्रय (देश, काल, वस्तु ) को भली भांति देखो और फिर उनकी स्वप्नावस्था के देश, काल, वस्तु से तुलना करके बताओ कि जाग्रत् की दृढ़ और कठोर हड्डियां ( देश, काल, वस्तु ) स्वप्नावस्था के नरम-नरम ढीले ढाले देश, काल, वस्तु से वही संबंध और नाता रखती हैं कि नहीं, कि जो जवानी को बचपन से होता है?

यहां पर सब पत्तों को लेकर सविस्तर प्रमाण से इस विषय को अधिक विस्तार देना उचित नहीं; इस समय इतना ही पर्याप्त होगा कि इस आशय का एक सामान्य सूचनापत्र संसार में वितरित किया जाय कि प्रत्येक व्यक्ति को

उचित है कि एकांत के सदूर स्थान में अपने आपको पहुँचा कर उल्लासपूर्ण होकर सुने। वहां दिल का ढोल पीटकर, आनंद का नगाड़ा बजाकर, प्रकाश यह घोषणा (manifesto) कर रहा है कि धनसुषुप्ति के पहाड़ों पर मिथ्या अज्ञान (अविद्या, माया, मूढ़ता) रूपी बर्फ की [स्थिर, जड़] झील चेतन (आत्मा) की तीक्ष्ण किरणों से अपने आप पिघलकर स्वप्नावस्था के छोटे-छोटे तागों के समान नाले बनती हुई जाग्रत् अवस्था में भारी नदी होकर बहने लगती है।

तम आसीत् तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमाइदं।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपस्तन्महिना जायतैकं ॥३॥
(ऋग्वेद मंडल १० सूक्त १२९)

अर्थ—(जगत् के प्रादुर्भाव से) पहले अंधेरे से ढपा हुआ अंधेरा था। यह सब कुछ अनियुक्त चिन्हहीन द्रव के समान अवस्था में पड़ा था। यह जो कुछ फैला हुआ है, उस समय तुच्छ [असत, अव्यक्त] के आवरण में था [फिर] वह एक तत्त्व की तीक्ष्ण शक्ति से अस्तित्व में आया।

अतः संसार के बड़े-बड़े नाम और चित्ताकर्षक रूप और कर्तव्य विमूढ़ता में डालनेवाली क्षोभ वा भ्रांति २ की वस्तुएँ इस एक ही घनसुषुप्ति का पसारा हैं, अज्ञान के अन्धकार का अंकुर हैं, अविद्या (अव्याकृति) की घटाटोप घुप अंधेरी रात में काल्पनिक भूत प्रेत हैं। यह सब भ्रम वा भ्रांति की बहुलता है, भयानक द्वैत केवल स्वप्नमात्र है। वासनाएं और उनके विषय धोका हैं, बढ़ा हुआ स्वप्न हैं। ऐ मनुष्य! तेरा स्वरूप इस अविद्या और इस अविद्या की इवोल्यूशन (विकास) से श्रेष्ठतर है। जब यह अविद्या घन-

सुषुप्ति के पहाड़ कारण-शरीर पर स्थित झील के रूपमें काई रूप आवरण से ढकी होती है, तेरा प्रकाश, तेरे स्वरूप का तेज उस पर वैसा ही चमकता होता है जैसा कि उस सूरत में जब कि वह स्वच्छ-निर्मल पहाड़ी नालों की तरह स्वप्नावस्था में बहती है, या जैसा कि उस रूप में जब कि यह अविद्या बलशाली धारा बनकर जाग्रत् अवस्था में कलकलाती हुई नदी की शोभा दिखाती है।

ऐ सूर्यवत् प्रकाशमान् पुरुष ! तू अविद्या की नदी में डावां-डोल प्रतिबिम्ब अपने आप को मत मान। माना कि लाखों तरंगों पर तेरा प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, पर अस्थिर लहरों के कारण अपने आपको टुकड़े-टुकड़े समझ बैठना क्या अर्थ रखता है ? हाय मेरे प्राणप्रिय !

क़त्ल बेशमशीर तुम तो हो गए।
आइना दिखला दिया दो हो गए॥

भला इतना तो बतलाओ, कि "तुम हो कि नहीं हो ?" हाय ! मैं न्यौछावर ! शत्रुओं को 'नहीं'। 'नहीं' कहनेवाले की जिह्वा पर फफोले पड़ें ! तुम हो, अवश्य हो, यदि अविद्या के दम में आकर तुम्हारे मुँह से बहकी-बहकी बातें निकलने लग पड़ें और तुम बोल उठो कि "मैं नास्ति हूं, केवल शून्य हूं, मैं नहीं हूं, इत्यादि" तो तुम्हारे ऐसा कहने ही से तुम्हारा अस्तित्व सूर्यवत् प्रकाशमान् है। "मैं सोया हूँ" कहने से स्पष्ट पाया जाता है कि वक्ता जागता है। ज़रा विचार तो कर देखो कि 'मैं नहीं हूँ' इस विचार का प्रकाशक तुम्हारा अपना आप ज्यों का त्यों स्वतः विद्यमान रहेगा। अतः यदि तुम्हारा अपना आप 'है' और नहीं की नहीं सह सकता, तो तुम अवश्य सदा विद्यमान निराकार सूर्य ही हो,

प्रतिबिंब किसी प्रकार नहीं हो सकते, क्योंकि प्रतिबिम्ब मिथ्या है, झूठ है, भ्रम और भ्रांति है।

अय आँ कि तू खुदा रा जोई हरजा।
चे तू खुदा नई? खुदाई ब खुदा॥

अर्थ—अय मनुष्य! तू हर स्थान पर ईश्वर को ढूँढता है, क्या तू स्वयं ईश्वर नहीं है? ईश्वर की सौगंध, तू ईश्वर है।

Some thousand thousand times or more
Unto myself I witness bore;
"Gladly gives Nature all her store" She
Knows not kernel, knows not shell.
For she is all in one.
But thou,
Examine thou thine own self well
Whether thou art kernel or art shell.
(Goethe)

अर्थ—हज़ारों बरन् लाखों बेर मैं ने अपने भीतर अनुभव किया (या अपने आप के विषय में साक्षी दी) कि प्रकृति प्रसन्नता से अपने स्वामी मनुष्य को अपनी समस्त पूँजी अर्पण करती है, वह बाहर के छिलके और भीतर के गूदे में कोई भेद नहीं करती, क्योंकि वह सब एक में है, (अर्थात् वह क्योंकि सब स्थानों में सब रूप और प्रत्येक रूप में परिपूर्ण है, इस लिये वह बाहर के नाम रूप और भीतर की आत्मा आदि का पृथक्करण नहीं करती); किंतु तू ऐ मनुष्य! अपने गिरेबान में मुँह डाल कर देख अपने

आपका भली भांति निरीक्षण कर) कि तू स्वयं भीतर का गूदा (आत्मा) है या बाहर का छिल्का (नाम रूप) है। (गेटे)

कृतघ्नता [treason], सम्राट् को गाली देना और लांछन लगाना बड़ा अपराध माना गया है, तो क्या राज-राजेश्वर, सम्राटों के सम्राट् अपने पवित्र स्वरूप परमेश्वर को कलंक लगाना पाप न होगा?

हक़ दानमो-हक़ गोयमो-दर राहे-अनलहक़।
मंसूर सिफ़त सर बसरे-दार फरोशम॥

अर्थ—मैं हक़ [तत्त्व] जानता हूँ और तत्त्व कहता हूँ और अनलहक़ [शिवोऽहं] के मार्ग में मंसूर [आत्मज्ञानी] की भांति फाँसी के ऊपर अपना शिर बेचता हूँ।

पश्चाताप करो सेवक बनने से! न अपने आप को नाशमान और परिच्छिन्न मानो, और न शरीर के जेलखाने में सज़ा भोगो।

सृष्टि की सीमा में जड़ जगत् और वनस्पति जगत् के पर्तों [तबकों] से होकर प्रकृति का प्राणी के शरीर रूपी वस्त्रों को ओढ़ना मानों स्वप्नावस्था में अवतरण करना है। योरोपियन लोग चाहें उसे विकास ही से अभिहित करें। इस अवसर पर देश, काल, वस्तु का जाला मस्तिष्क में तनना आरंभ हो जाता है। प्रकृति के विकारों में सफ़ाई आते आते यहाँ तक दशा हो जाती है कि जर्मन लैंप पर चीनी की हँडिया (Globe) के समान अर्द्ध-स्वच्छपन (Translucency) निकल आता है; और पुरुष का प्रकाश रहरह कर कुछ प्रकट होने लगता है, कुछ रुका रहता है।

मख़फ़ी नहीं है चेहरए-जानां नक़ाब में।
महताब आ गया है हिजाबे-सुहाब में॥

है चश्म नीम बाज़ अजब ख़्वाबे-नाज़ है।
फ़ितना तो सो रहा है दरे-फ़ितनाबाज़ है॥

साँवली सखी (कृष्ण) बारीक साड़ी पहन कर आ जाती है और घूँघट की आड़ में से आँखें मार-मार बुद्धि और विचार को गोलमाल करना आरंभ करती है। पर यह भी कोई बात है भला?

बहर रंगे कि ख़्वाही जामा मे पोश।
कि मन आँ क़दे-मौजूँ मी शिनासम॥

अर्थ—जिस रंग में तू चाहे, कपड़े पहन, मैं तो वही तेरा मौजूँ क़द पहचानता हूँ।

क्यों ओहले बह बह झाकींदा; एह पर्दा किस तों राखींदा।

**जाग्रत**—चलिए, स्वागत की तैयारी कीजिए। वह मनुष्य जी महाराज पधारे। स्वागत! स्वागत!! प्रकृति अब खरी ख़ासी जागी हुई है। देश काल और वस्तु इम्कान [सम्भावना] के अंड को फोड़ चुके, और जिधर देखो उधर ही बाहु फैलाए उड़ रहे हैं। प्रकृति के माद्दे में सफ़ाई की यह दशा है कि अब उसे चीनी की हँडिया से नहीं वरन् स्वच्छ शीशे की चिमनी से तुलना कर सकते हैं। पुरुष का प्रकाश साफ २ झलक रहा है। क्या पर्दा बिलकुल टूट गया? पुरुष नंगा है? जान तो ऐसा ही पड़ता है। भला देखें तो सही। ऐ लो! प्रेम के पतंग ने पुरुष रूपी ज्योति की ओर मुख किया। उसकी समझ में कोई अवरोधक नहीं। प्राण समर्पण करने वाला किस शीघ्रता से आरहा है। हाय भाग्य (हाय किस्मत) टक्करें मार-मार कर रह गया।

खाक बर जाने-हवा-दारिये-फानूस फितादं।
कि अज़ो शमा जुदा सोज़द व परवाना जुदा ॥

अर्थ—फानूस की इस खैरख्वाही पर धूलि पड़े कि उस के कारण ज्योति अलग जलती है और पतंग अलग।

पुरुष अभी प्रकृति की चारदीवारी में घिरा है, मुक्त नहीं हुआ। मुक्त तो जब हो, जब अद्वैत का पतंग उस के साथ एक प्राण होसके, अभी तो अहं मम की दीवार प्रेम (अनन्य प्रेम) को रोके खड़ी है।

घनसुषुप्ति (खनिज वर्ग और वनस्पति वर्ग), स्वप्न (प्राणि वर्ग) और जाग्रत (मनुष्य) की अवस्थाओं को प्रकृति की स्थूलता (मलिनता) के भेद से क्रमशः तमोगुण, रजोगुण और सतोगुण वाली वर्णन किया गया है, और हांडी चिमनी आदि पदार्थों के रूप की उपमा दी गई है. पर यह न समझ बैठना कि स्वप्नावस्था (प्राणि वर्ग) और जाग्रत् अवस्था (मनुष्य वर्ग) में पुरुष रूपी ज्योति के लिये प्रकृति अपनी आकृति भी हांडी और चिमनी की सी रखती है; और न यह ख्याल करना कि स्वप्नावस्था (प्राणि वर्ग) और जाग्रतावस्था (मनुष्य) में प्रकृति शुद्ध सतोगुण और शुद्ध रजोगुणवाली होती है, वरन् प्रत्येक दशा में तीनों अवस्थायें वर्तती हैं. जहां वाक् और वाणि की दाल नहीं गलती वहां अलंकार से थोड़ा बहुत काम निकल सकता है, अलंकार की भाषा [Metaphorical Language] में प्रकृति की अपनी आकृति चाहे स्थूल [तम,रज वाली] रहे,चाहे चिमनी के समान सूक्ष्म [सतोगुण वाली], किन्तु प्रकृति की आकृति और बनावट [Crystallization बिल्लूर, स्फटिक] सदैव एक तिकोन स्फटिक

[Prism. क्रकचायत] की सी रहती है जिसके तीन पार्श्व (पहलू) तो सत,रज,और तम हैं और दोनों सिरे नाम व रूप. जैसे सूर्य का प्रकाश तिकोन स्फटिक से निकल कर भांति २ के रंग दिखाता है, वैसे सत् चित् आनन्द पुरुष की ज्योति (कांति और तेज) अविद्या के स्फटिक(Prism) में से निकल कर चित्र विचित्र हो जाती है और नानत्व का रंग जमाती है ,संसार बनकर दिखाई देती है।

मग़रबी आंचे आलमश ख़्वानंद।
अक्से-रुख़सारे-तुस्त दर मरआत्॥

अर्थ—ऐ मगरबी (कवि) ! जिसको कि संसार कहते हैं वह शीशे में केवल तेरे मुखमंडल की छाया है।

तेरे रूप अनूप के प्यारे ! हैं सब मैं चहकारे।
अय प्यारे-कहीं गुल बन के हो ख़ंदाँ कहीं हो बुलबुले-नालाँ।
झलकता है यहाँ सब में तेरा रंगे तरहदारी॥
तेरी सूरत को जब देखा हुआ हैरान आईना।
ग़रज़, की गुलशने-हस्ती में तूने खूब गुलकारी॥

जागृति में यह स्फाटिक बहुत स्वच्छ-निर्मल होता है, इस लिये सारे रंग [देश काल वस्तु] आदि अत्यंत तीक्ष्ण और तेज़ [चटक] दिखाई पड़ते हैं। स्वप्न यह स्फटिक धुंधला-सा होता है,पहलेकी अपेक्षा से मलिन होता है,प्रकाश बाहर निकलता तो है किंतु रंग ( देश, काल, वस्तु ) मद्धिम और पतले-पतले होते हैं। घनसुषुप्ति में स्फाटिक बिलकुल काला और स्थूल होता है, इस लिये कोई रंग बाहर नहीं आता, संसार नहीं बनता।

प्रकाश स्वच्छ-निर्मल वस्तुओं पर पड़कर न केवल (१)

वार-पार हो जाया करता है, जैसे लेम्प की चिमनी या स्फटिक में इसका नाम प्रकाश-प्रत्यावर्तन Refraction—है, वरन् (२) अनेक अवसरों पर शीशे के पार नहीं जाता और लौटकर स्वच्छ वस्तु के पहले ही ओर रहता है, जैसे आरसी में या पानी में जेंटिलमैन की छाया के समान (इसका नाम प्रतिबिंब—Reflection—है)। प्रतिबिम्बित मुख दिखाई तो पानी या दर्पण के बीच में देता है, किंतु वह प्रकाश वस्तुतः रहता पानी या शीशे के बाहर ही बाहर है। इसका हेतु प्रत्येक गणितज्ञ सविस्तर बता सकता है, वह छाया जो पानी या दर्पण के बीच में दिखाई पड़ती है, सत्य नहीं होती, अतः गणितज्ञों की परिभाषा में वह मिथ्या छाया या वर्चुअल इमेज (Virtual Image) कहलाती है। (३) और प्रकाश वस्तुओं में शोषित भी हो जाया करता है, जिस के कारण आरसी पानी आदि स्वयं दिखाई देते हैं। कई बेर ये तीनों क्रियाएँ इकट्ठी प्रकट होती देखी जाती हैं।

(अविद्या नाम-रूप कांच स्वयं दृष्टिगोचर होता है। यहाँ तो पुरुष पुरुषोत्तम का प्रकाश मायामय होकर भास रहा है।

स्वप्न में वस्तुओं का दृष्टिगोचर होना और जागृति में संसार का भान होना यह पुरुष का प्रकाश माया के स्फटिक में से गुज़र जाने (Refraction) के कारण से है. शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, चित्र-विचित्र रंग (आभास) क्या हैं ? केवल पुरुषोत्तम के प्रकाश का आविर्भाव माया के स्फटिक (Prism) में से वार-पार गुज़रा हुआ। यह स्फटिक अनंत है, अर्थात् शरीर (मनुष्य) बहु संख्यक हैं, किंतु पुरुषोत्तम (सूर्य) एक ही है। प्रत्येक व्यक्ति के अंतः करण से उस एक

ही पुरुषोत्तम का प्रकाश निकल कर भांति-भांति की शोभा बना रहा है।

अब आइए,प्रकाश के प्रतिबिंब [Reflection अर्थात् पार हो जाने के स्थान पर पिछली ओर मुड़ने] की दशा देखियेगा। यह घटना Phenomenon केवल मनुष्यदशा में दिखा देना पर्याप्त होगा. देखना, सुनना, सूँघना, छूना, बोलना, खाना, पीना, चलना, फिरना, लेना, देना, आदि यह कर्म होते समय इस प्रश्न के उत्तर में कि इनका मूल कौन है? एक "मैं" का विचार (Ego) इंद्रियों और शरीर में विशिष्ट झलक मारता है, "मैं शरीर का स्वामी,इंद्रियों का स्वामी" यह कर रहा हूँ, यह भोग रहा हूँ, चलता हूँ, गाता हूँ, रोता हूँ, आदि। वह काम अमुक व्यक्ति ने किया, वह कर्म किसी और से हुआ, यह कर्म किसी तीसरे मनुष्य से दृष्टि में आया, "मैं" भिन्न हूँ, यह और हैं, मैं और हूँ, आदि। इस प्रकार शरीर और प्राण में बन्धायमान जो "मैं" का ख़याल है, यह अहंकार रूप "मैं" वेदांत वालों के यहां "चिदाभास" कहलाता है, अर्थात् चैतन्य का अंतः करण में मिथ्या (virtual) आभास इसी का नाम "जीव" भी लिखा है।

अब देखिए, भिन्न-भिन्न कर्म और चेष्टाएँ तो क्या सुषुप्त्यावस्था में, क्या स्वप्नावस्था में, और क्या जाग्रतावस्था में, केवल पुरुषोत्तम के समक्ष तीन गुणोंवाली प्रकृति (अविद्या) के ऐर-फेर, परिवर्तन और नाच कूद के कारण से दृष्टिगत हो रहे हैं। किंतु "मैं करता हूँ, मैं भोगता हूँ, "मैं मैं मैं" इस धोकेबाज़ "मैं" के गले पर छुरी, यह "मैं" का ख़याल अपने आप ही पल्ला पकड़ता जाता है। इस "मैं" (अहंकार) के जाल में फँसे हुए महाशयो! यदि तुम

(चिदाभास) ही सब कुछ करने वाले हो, तो सुषुप्ति को अपने ऊपर क्यों प्रभावशाली (ग़ालिब) होने देते हो। यह अवस्था तो तुम्हारे "मैं वैं" को एक प्रकार उड़ा ही देती है, उस समय तो कर्त्ता भोक्ता "मैं" का पता ही नहीं मिलता।

ऐ परिच्छिन्न "मैं"! तनिक देख तो सही, न तो निद्रा ही तेरे वश में है, न जागृति। रक्त-संचरन, अभिवृद्धि, नसों, पट्ठों और हड्डियों आदि का प्रतिपालन भी इस परिच्छिन्न अहं भाव के कब वश में है? शरीर में प्रति क्षण कार्य-संग्राम जो गरम रहता है, ऐ तुच्छ अहंकार! तुझे उसका पता ही क्या है? ऐ चिदाभास! यदि शरीर तेरा है, तो इसे मरने ही क्यों देता है, बरन् इसके रोग-ग्रसित होने के समय ही क्यों चिंता में पड़ जाता है?

आह! भुलावा देनेवाली प्रकृति (अविद्या) के दाँव में आकर 'परी' शीशे में उतर आई, नहीं इंद्र स्वयं ईश्वरता को छोड़कर अहंकार में आ गिरा, जीव और दास कहलाया. ऐ आत्मदेव इंद्र! तुम्हारा अपना सच्चा राजपाट बना रहे; बद्ध जीव, दास बनना क्या प्रयोजन? तुम प्रतिबिम्ब तो नहीं हो?

बिया बर आस्माने-दिल चो खुरशेद।
ज़े कौकब पाक कुन लोहो-समा रा॥
सुलेमाना! बियार अंगुश्तरी रा।
मुती-ओ-बंदाकुन, देवो-परी रा॥

अर्थः-हृदय आकाश पर सूर्य की भांति आ, हृदयपटल और हृदयाकाश को नक्षत्रों से स्वच्छ कर (अर्थात् ज्ञान

के बल से संशय-संदेह को मिटा दे )। ऐ सुलेमान ! अपनी अँगूठी ला और देव और परी को दास बना।

**प्रश्न**—यह तो मान लिया कि शरीर आत्मा नहीं है, पर क्या आत्मा कर्त्ता, भोक्ता नहीं है, और आत्मा इच्छा, द्वेष, सुख, दुख, प्रयत्न और ज्ञान इन षट् लिंगो वाला नहीं है ? यथा—

इच्छाद्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति।
(न्याय सू० १०)

और क्या आत्मा जन्म-मरण में भी नहीं आता है ?

**राम**—सूक्ष्म शरीर [प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय कोष] के गुण, कर्म, स्वभाव को आत्मा में आरोपने से जीवपन आता है। जैसे स्थूल शरीर आत्मा नहीं है, वैसे सूक्ष्म शरीर [प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोष] भी आत्मा नहीं है। इतनी बात तो सहज ही समझ में आ जाती है कि स्थूल शरीर मैं नहीं, किंतु "सूक्ष्म शरीर मैं नहीं" इसको समझने में कुछ अधिक विचार व विवेक की आवश्यकता है।

यह भगवे रंग की रेशमी कफनी पड़ी है; इसके पास बिल्लौर ( स्फटिक ) का टुकड़ा धरा है। बिल्लौर भगवा दिखाई देता है। (१) पर क्या यह बिल्लौर सचमुच भगवा है ? नहीं। आप ने क्योंकर जाना कि बिल्लौर भगवा नहीं ? बिल्लौर को भगवी कफनी से झटपट अलग कर दिया, तो बिल्लौर का भगवा रंग जाता रहा, जिससे तत्काल ज्ञात हो गया कि बिल्लौर का रंग केवल उपाधि के कारण भगवा था (२) क्या कफनी भगवी है ? हां यह तो है।

मेरे प्राणप्रिय! कफनी भी भगवी नहीं। कफनी के रेशमी परमाणुओं के निकट भगवे रंग के परमाणु वैसे ही पृथक पड़े हैं, जैसे बिल्लौर के निकट कफनी अलग पड़ी थी। धो देने से यह रंग उतर भी सकता है, अर्थात् तनिक परिश्रम से रंग के भगवे परमाणुओं को रेशम से वैसे ही पृथक करके दिखा सकते हैं,जैसे कफनी को बिल्लौर से पृथक करके दिखाया था। तनिक और ध्यान से देखो तो रंग वंग सब सूर्य ही की माया है। प्रत्यक्ष भगवे बिल्लौर का वस्तुतः रंगीन न होना तो सहज में समझ में आ गया था, किन्तु प्रत्यक्षतः भगवी कफनी का भी रंगीन न होना तनिक देर से और कठिनता के साथ समझ में बैठा। ठीक उसी प्रकार स्थूल शरीर का आत्मा न होना तो झटपट समझ में आ जाता है किन्तु सूक्ष्म शरीर का आत्मा न होना सामान्य मनुष्य की तत्काल समझ में नहीं आता। इसका कारण यही है कि अंतःकरण को वैराग्य के पानी से धोकर द्वैत का कल्मष उतारना लोग स्वीकार नहीं करते।

**आपत्ति**—आप के मत से तो जागृति स्वप्न में से प्रकट होती है, किंतु हम नित्य देखते हैं कि स्वप्न उन्हीं बातों से संबंधित होते हैं,जिन से जागृति में प्रयोजन रहता है। जैसे चमार को कभी यह स्वप्न नहीं आता है कि मैं गंगा-तट पर संध्या कर रहा हूँ,भारत के आठबर्ष के बालक को कभी यह स्वप्न नहीं आता कि मैं सेंटपीटर्सबर्ग के बाज़ार में घूम रहा हूं।

**राम**—कुछ विद्वानों के निकट प्रथम तो यह बात आज तक पूर्ण रूप से प्रमाणित नहीं हुई कि स्वप्न सदैव

जाग्रत् काल की बीती हुई घटनाओं से बनते हैं ( क्योंकि कुछ स्वप्न भविष्य के संबंध में सत्य भी निकला करते हैं, दूसरे मनुष्य का बच्चा कई बेर ऐसा स्वप्न भी देखता है कि मैं उड़ रहा हूँ, आकाश में उड़ रहा हूं, आदि ]। अस्तु, इस बात को यदि मान भी लिया जाय कि स्वप्न का विषय सदैव भूतकालिक घटनाओं के ऐर-फेर पर निर्भर होता है, तो फिर भी इस से पूर्व लिखित वेदांत-सिद्धांत पर कोई आपत्ति नहीं आ सकती। बीज सदैव वृक्ष से उत्पन्न होता है, बीजवाला फल वृक्ष ही को लगता है, किंतु इसमें भी कुछ संदेह नहीं कि वृक्ष बीज से उत्पन्न होता है, समस्त वृक्ष बीज में समाया होता है; वैसे ही मान लिया कि स्वप्न में जागृत के संस्कार होते हैं, किंतु ऐसा होते हुए भी बीज से वृक्ष की भांति स्वप्न से जागृति का फैल आना ठीक ही रहता है। जब स्थूल शरीर मर जाता है, तो स्वप्नावस्था वाला सूक्ष्म शरीर बीज की भांति कारण शरीर [या अविद्या] की भूमि पर आत्मा रूपी सूर्य के प्रकाश में नए सिरे से उग आता है, अर्थात् एक नूतन स्थूल शरीर धारण कर लेता है। जैसे दूसरे जन्म के समय सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर की उत्पत्ति का कारण होता है, वैसे ही छोटे पैमाने पर प्रतिदिन स्वप्न का सूक्ष्म शरीर जाग्रत् के स्थूल से प्रथम होता है।

कुछ लोग स्वप्न और सुषुप्ति को जाग्रत् की थकावट का परिणाम मानते हैं। उनको केवल यह स्मरण करा देना है कि यदि स्वप्नावस्था थकावट से आती है तो जाग्रत् भी स्वप्न की थकावट ही से आती है। सोए-सोए थक जाते हो, तो जाग आ जाती है।

**सब धर्मों के कथन सत्य हैं**—जाग्रतावस्था के पश्चात् स्वप्नावस्था सदैव आया करती है, स्वप्न से फिर जागृति उदय हुआ करती है, मानो मृत्यु से फिर पुनरुत्थान ( resurrection ) हुआ करता है। स्वप्नावस्था के विषय प्रायः वही होते हैं जो दिन-भर ध्यान को खींचते रहे हों। अर्थात् जो विचार जाग्रतावस्था में सूक्ष्म-शरीर को प्रवृत रखते रहे हों, प्रायः वही स्वप्नावस्था में प्रकट हुआ करते हैं। जो कार्य प्रति दिन होता देखने में आता है, वही बड़े पैमाने पर मृत्यु के पश्चात होता दीखता है। एक सच्चा और पक्का कर्मकाण्डी(उपासक जो पचासवर्ष के जीवन के समस्त दिन भर में बचपन से लेकर बुढ़ापे तक पांच समय संध्या पढ़ता रहा इस विश्वासके साथ कि "जब मृत्युकी रात पड़गी, मुझे स्वर्ग की प्राप्ति होगी, अपसरायें और गंधर्व का आलिंगन मिलेगा, अमृत-जल पीने को,नंदन-कानन विचरण को, उत्तमोत्तम प्रासाद रहने को मिलेंगे।" निस्संदेह मृत्यु की रात पड़ने पर ऐसे मोमिन ( कर्मकाण्डी मुसल्मान ) के सूक्ष्म शरीर को यह सब वस्तुएं मिलनी चाहिएं।

जो व्यक्ति समस्त आयु के जागते दिन में मंदिरों में हाथ जोड़ जोड़ कर और माथे रगड़ रगड़ कर यह निश्चय पकाता रहा है कि मुझ से रास लीला और श्रीकृष्ण परमात्मा के दर्शन कभी न छूटें, ऐसे विश्वासी भक्त को मृत्यु के पश्चात् अवश्य गोलोक मिलेगा।

जो व्यक्ति प्रत्येक रविवार और बुद्धवार को गिरजा में सच्चे दिल से प्रार्थना करता रहा है, प्रत्येक प्रभात और संध्या को घुटने के बल बैठकर या खड़े होकर सिर झुका

और हाथ उठाकर नमाज़ चुकाता रहा है, और मरते समय अपने उद्धारक के ध्यान में स्थूल शरीर छोड़ता है, वह क्यों मृत्यु के समय ईश्वर के दक्षिण हस्त को हज़रत ईसी के छत्रछाया में परिवर्त्तित न होगा ?

जो व्यक्ति समस्त आयु मुक्त शिला पर लट्टू रहेगा, वह मृत्यु रूप स्वप्न में मुक्त शिला अवश्य गढ़ लोग और उस को अपना सिंहासन बनाएगा।

जिस के मन में यह खूब जच गया है कि मैं अपराधी, नीच, पापी हूं, नरक के योग्य हूं, वह स्वाभाविक ही नरक रूप स्वप्न का अधिकारी है।

**प्रश्न**—तुमने सब धर्मों के उद्दिष्ट लक्ष्य वा उद्देश्यों को केवल स्वप्न विचार ही बना दिया, उनका उपहास कर रहे हो ?

**राम**—नहीं प्यारे ! राम के तो सब अपना आप ही हैं-वह किसी से लगावट की बात नहीं करता। मगर किसी भय और आशंका से कंपित होकर सत्य को छिपाना भी वह नहीं जानता स्वर्ग नरक आदि भोगते समय वैसे ही सत्य और वास्तविक प्रतीत होंग जैसे इस समय भूमि सत्य और वास्तविक दृष्टि में आ रही है। स्वप्न आते समय किसी को स्वप्न कभी झूठ भी ज्ञात हुआ है ?

धर्मों को परस्पर लड़ने-झगड़ने की कुछ आवश्यकता नहीं कि हमारा स्वर्ग सच्चा है और तुम्हारा स्वर्ग झूठा है, इत्यादि। जैसे एक ही कमरे में लेटे हुए मनुष्यों के लिये १० पृथक् पृथक् संसार विद्यमान होते हैं और एक दूसरे में प्रवेश नहीं करते और न एक दूसरे के बाधक

होते हैं, वैसे ही ईसाइयों को अपने कल्पित स्वर्ग, मुसलमानों को अपनी इच्छा के अनुसार स्वर्ग, सच्चे प्रेमियों और विश्वासी भक्तों को गोलाक और वैकुंठ का आनंद. "मैं अधम, गुनहगार, पापी अपराधी" के विचार में निमग्न महाशयों को नरक बिना खटके और विना रोक टोक प्राप्त होगा। जब अपने अपने स्वर्ग या नरक के आनंद ले चुकेंगे, तो फिर पुनर्जागृति [resurrection] होगी। अपने-अपने कर्मों के अनुसार स्थूल जगत् में नया जन्म होगा। किंतु सच पूछते हो, स्वर्ग और नरक भी तुम्हारा एक खेल है, और यह स्थूल जगत् भी तुम्हारी एक क्रीडा है, एकमेवा-द्वितीयम् रूपी ज्ञान की मदिराके मतवाले तो स्वर्ग की वाटिका, प्रज्वलित नरक और समस्त धरती मंडल को तीन ग्रास करके आप ही आप रह जाते हैं।

दोज़ख़ बद रा बिहश्त मर नेकाँ रा
जानाँ मारा व जाने-मा जानाँ रा ॥१॥

न हरफ़े-शिकवा मी ख़्वानम् न वस्ल अज़ हिज्र मी दानम् ।
दिले-बे आरज़ू अफ़साना-ओ-अफ़सूँ चे मी दानद ॥ १ ॥
ज़ुबाने-बुलबुलाँ आनाँकि मी दानंद मी दानंद ।
कि ज़ागे-शूम दुश्मन नालए-मौज़ूँ चे मी दानद ॥ २ ॥
तपीदनहा चे मी दानद दिले-अफ़सुर्दा-ए-ज़ाहिद ।
अदाए क़ावशे-नश्तर रगे-बेख़ूँ-चे मी दानद ॥ ३ ॥
फ़लातूँ इल्लते-बे ताबीए-मजनूँ चे मी दानद ।
तो ईं हिकमत ज़ लैली पुर्स,अफ़लातूँ चे मी दानद ॥ ४ ॥
तग़ाफ़ुल हाय यूसफ़ बा ज़ुलेख़ा दीदमो-गुफ़्तम् ।
कि तिफ़्ले-नाज परवर लज़्ज़ते-शबख़ूँ चे मी दानद ॥ ५ ॥
गरामी खुम निशीनी दीगरस्त खुमकशी दीगर ।

तू इसरारे-खुम अज़ मन पुर्स, अफ़लातूँ चे मी दानद ॥ ६ ॥

अर्थ—नरक बुरों (पापियों) के लिये है और स्वर्ग अच्छों (पुण्यवानों) के लिये; पर प्यारा हमारे लिये और हमारा प्राण प्यारे के लिये है ॥ १ ॥

न तो मैं कोई शिकायत की बात कहता हूँ, न मिलाप और विछोड़े में कोई विवेक करता हूँ, निष्कामी चित्त भला क्या जानता है। २

बुलबुलों की भाषा जो व्यक्ति जानते हैं वही समझते हैं, और अभागा कौवा (बुलबुल की) उपयुक्त ध्वनि को भला क्या जानता है। ३

संयमी पुरुष का बुझा हुआ मन तड़पने को भला क्या जानता है (अर्थात् नहीं जानता), नश्तर से चुभने की चेष्टा (दशा) रक्तहीन नस भला क्या जानती है ? ४

अफ़लातून मजनूँ की विह्वलता का कारण भला क्या जानता है, इस बुद्धि को तू लैली से पूछ, अफ़लातूँ भला क्या जानता है ? ५

मैं ने यूसफ़ की ला परवाहियाँ जुलेखा के साथ देखीं और कहा कि नाज़परवर लाड़ला लड़का खून की रात का मज़ा क्या जान सकता है ? ६

ए गरामी ! मटके पर बैठना और है और सोम (सुरा) पान करना और (अर्थात् प्रेम का नाम लेना और हैं और प्रेम करना और है), तू मटके (प्रेम) का हाल मुझसे पूछ; अफ़लातूँ भला क्या जानता है ? ७

**आवागवन**—लाहौर के एक मनुष्य को स्वप्न आ

रहा है कि 'मैं गंगा किनारे वाटिका में लेटा हूं, सुगंधित वायु की लपटों से मस्तिष्क आमोदित हो रहा है, वासंती वायु के झोंके हृदय-कलिका को खिला रहे हैं, सितार तंबूरे के साथ गायक लोग ज्ञान के गीत गा रहे हैं, गंगा ध्वनि के साथ मिला हुआ उनका शब्द अत्यंत प्रफुल्लित प्रभाव डाल रहा है। विचित्र समाबंध रहा है। इस आनंद में उसकी आंख लग चली है, गुलाबी नींद में अर्द्धोन्मिषित लोचनों से राम के दर्शन हो रहे हैं। लो अब मीठी नींद आई, बिलकुल सो गया। यह स्वप्न में स्वप्न है। फिर जाग पड़ा। सामने वही राम है, वही वाटिका है, वही गंगा, वही रागरंग।" इतने में स्त्री ने आकर कंधा हिलाया। क्या देखता है कि लाहौर में अपने महल के एक कमरे में बिछौने पर सोया पड़ा हूं।

स्वप्न के भीतर स्वप्न में उस के ख्याल का समष्टि अंग (object) जो गंगा, वाटिका, रागरंग और राम के रूप में प्रकट था, बना रहा; किन्तु उसके ख्याल का व्यष्टि अंग (Subject) जिसकी बदौलत वह एक व्यक्ति (मनुष्य) बना हुआ था, लीन होगया। स्वप्न में जाग पड़ने पर यह व्यष्टि अंग फिर प्रकट हुआ, तो समस्त व्यापार (अर्थात् गंगा, राम, वाटिका इत्यादि) को ज्यों का त्यों पाया। और जब स्त्री ने कंधा हिलाया तो समष्टि अंग [Object] में जो व्यष्टि अंग (Subject) था वे दोनों स्वप्न और ख्याल मात्र हो गये।

इस प्रकार जाग्रत अवस्था में यह पर्वत, तारे, नदी आदि तुम्हारे ख्याल की समष्टि अवस्था हैं, और "मैं एक मनुष्य हूँ" तुम्हारे ख्याल की व्यष्टि अवस्था है। जब अज्ञानी पुरुष

मरता है, तो उसके ख्याल की समष्टि दशा (मूल अविद्या) स्थिर रहती है, किंतु व्यष्टि दशा ( तूल अविद्या ) लीन हो जाती है; इस लिये फिर जहां जन्म लेता है, वही भूमि, वही आकाश, वही पंचभूत विद्यमान पाता है। आवागवन के चक्कर में लगा रहता है। किंतु ज्ञानवान् वह है जिसको श्रुति भगवती ने 'एतद्वैतत्, एतद्वैतत्—यह वही है, यह वही है" कहते-कहते कंधा हिलाकर जगा दिया है। उसके लिये व्यष्टि ( तूल अविद्या ) और समष्टि ( मूल अविद्या ) दोनों स्वप्न और ख्याल मात्र हो गए। यह " मेरा शरीर और है और यह संसार और है" दोनों ही रेल की तरह उड़ गए. नहीं नहीं शशक-शृंग होगए। ऐसा महात्मा मुक्त है

जिसके भीतर तेजस्वरूप "अहं ब्रह्मास्मि" की अग्नि सदैव प्रज्वलित है। इस अग्निकुंड पर सिद्धासन जमाए हुए अचल भाव से विराजमान है. भीतर से यदि कोई द्वैत का फुरना या संकल्प उठता है, तो झट इस अग्नि की आहुति कर देता है, बाहर से मन रूपी अश्व को चारो ओर खुला छोड़ दिया है। इस अश्व के पीछे अपने सेनापति विवेक [Discrimination] को भेज दिया है कि जहां जहां से घोड़ा निकलता जाय, वह देश विजित होता जायगा। यदि कोई इस घोड़े को बांध रक्खे [ अर्थात् किसी वस्तु पर चित्त चलायमान हो ], तो इसको 'तत्त्वमसि" के तीरों से जय किया जायगा। जहां-जहां मन [ घोड़ा ] फिरा, वहां-वहां अपना आप देखा। राजा हो या दंडी हो, मर्द हो या रंडी हो, प्रत्येक का आत्मा प्रत्येक को परमप्रिय अपना आप हो गए। धीरे-धीरे समस्त संसार को विजय कर लिया, कोई वस्तु भिन्न न रहने पाई, सब अपने हो गए।

"सब मेरे, सब मेरे, और मैं सबका" यह मामला हो गया। मुझसे कुछ भी पृथक न रहा। कामनाएँ आप ही आप सब मिट गईं—

यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः।

अर्थ—जहां-जहां मन जाता है, वहां-वहां समाधि लगती जाती है।

ज़े फ़र्श ता ब फ़लक हर कुजा कि मी निगरम्।
करश्मा दामने-दिल मीकशद कि जाय ईंजास्त॥

अर्थ—धरती से आकाश तक जहां मैं देखता हूँ [ तेरी माया का ] खेल मेरे मन के पल्ले को खींचता है और कहता है [ अर्थात् समस्त जगत् मेरे ध्यान को खींचकर यह पाठ पढ़ाता है ) कि उस प्यारे सुहृद का स्थान यहीं है

इस प्रकार देश-विजय और विश्व-विजय करते-करते जब सेनापति [ विवेक ] और घोड़ा [ मन ] थककर घर आए तो 'अहं ब्रह्मास्मि' की अग्नि में तनिक न हिलनेवाले पुरुष ने अपने इस अनुपम घोड़े को अत्यंत आनंद के साथ बलि देने के लिये काटना आरंभ किया और मन रूपी घोड़े का अंग-अंग उसी ज्ञानाग्नि में स्वाहा होता गया। ऐसा यज्ञ करने से संसार के राजे तो क्या समस्त देवता, इंद्र, ब्रह्मा आदि भी बशमें आगए। आश्चर्य का अश्वमेधयज्ञ था

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वराज्यमधिगच्छति॥ मनु०

अर्थ—सब में अपने आपको देखनेवाला और अपने आपको सब में देखनेबाला, ऐसा तत्त्वदर्शी जो आत्मा-यज्ञ में लगा है, स्वराज्य का छत्र और स्वामित्व लाभकरता है।

कित्ते बेसर चूढ़ा पाई दा कित्ते जोड़ा शान हुंडाई दा।
कित्ते माथे तिलक लगाई दा कित्ते सानूं भी भुलजाई दा॥
क्या वाह वा रंग बटाई दा पर किस थीं आप छुपाई दा।

वृंदावन में गऊ चरावें लंका चढ़के नाद बजावें।
मक्के दा बन हाजी आवें आपे ढौं ढौं ढोल बजावें॥
क्या वाह वा रंग बटाई दा पर किस थीं आप छुपाई दा।

मंसूर तुसां वल आया है तुसां सूली पकड़ चढ़ाया है॥
मेरा बीर न बाबल जाया है ? तुसीं खून देयो मेरे भाई दा॥
हुन किस थीं आप छुपाई दा किस गल्लों रंग बटाई दा।

बुल्हाशौहहुन सही सँझातेहो हर सूरत नाल पिछाते हो।
किते आते हो, किते जाते हो हुन मैथों भुल न जाई दा॥
हुन किस थीं आप छुपाई दा।

जगत् को सच देखने वाले प्यारो; जिस तराजू से तुम संसार की बस्तुओं को तोलते हो, वह तराजू परमात्मा को नहीं तोल सकता, इस भारी बस्तु को तोलते समय वह टूट जाता है। ज्ञानी के वाक्य पर मन-वाणी से विश्वास लाओ, पूरा-पूरा निश्चय करो। ज्योतिषियों ने शास्त्र दृष्टि से जब यह कह दिया कि पृथ्वी घूमती है, तो बच्चों को चाहे अपने आप घूमती हुई न भी दिखाई दे, फिर भी उनका यही पढ़ना-पढ़ाना उचित है कि "भूमि गतिशील ही है"। जब अधिक शिक्षा पाएंगे, अपने आप पूरे प्रमाणों के साथ क़ायल हो जायँगे। भूल का प्रचार बढ़ाना किसी प्रकार से भी ठीक नहीं।

**शंका कारक**—हे राम ! यह तुम क्या ग़ज़ब करते

हो कि अच्छे भले प्रत्यक्ष दिखाई देते संसार को तुम कहते हो कि मिथ्या है । जगत् के ब्याह, शादी, काम-धंदे, जवानी, रंग ढंग आदि सब के शिर पर खड़े होकर "राम राम सत्य है हरिका नाम सत्य है" यह शंखध्वनि करते हो। यदि जगत् नहीं तो सामने दिखाई ही क्यों देता है ?

**राम**—मृगतृष्णा को देखकर अनजान मनुष्य कहा करते हैं कि यदि यह पानी नहीं है तो दिखाई ही क्यों देता है ? कहीं रस्सी पड़ी हुई थी, एक मनुष्य को अँधेरे में भ्रांति के कारण साँप का अनुमान हुआ, वह कहता है कि यदि साँप नहीं तो सामने दिखाई ही क्यों देता है ? ज्ञानी पुरुष का यह उत्तर है कि प्यारे, साँप तुझको इस लिये दिखाई देता है कि रस्सी तुझको दिखाई नहीं देती। वैसे ही "जगत् नहीं तो सामने दिखाई ही क्यों देता है ?" इस वाक्य का उत्तर यह है—"क्योंकि परमात्मा है, पर तुमको देखने में नहीं आता।", जब परमात्मा दिखाई देगा तो जगत् अपने आप न रहेगा। चाहे भ्रांत मनुष्य को साँप ही दिखाई दे और रस्सी न दिखाई दे, पर वस्तुतः तो सांप कभी हुआ ही नहीं; वैसे ही प्यारे ! यद्यपि इस समय तुझे जगत् दिखाई दे, पर वास्तव में तो एक ब्रह्म ही ब्रह्म ज्यों का त्यों बिना परिवर्तन के निर्विकार और अपने निज तेज से प्रकाशमान है।

हिंदुओं के जितने संप्रदाय जगत् को सत्य मानते हैं, उनसे पहले यह प्रश्न है कि बताओ किसी बात में अंधे की साक्षी अधिक विश्वास-योग्य होती है या आंख वाले की ?

प्रश्न दूसरा—आनंद स्वरूप मुक्त पुरुष अंधे की भांति होता है कि वास्तव में नेत्र वाला होता है ? फिर यह पूछना है—

प्रश्न तीसरा—यदि मुक्त पुरुष वास्तव में नेत्रवाला होता है तो उसकी साक्षी (गवाही) निस्संदेह अधिक विश्वास-योग्य होगी कि नहीं ?

अब देखिए, सांख्य-शास्त्र के अनुसार मुक्तपुरुष के लिये 'कैवल्य' में जगत् कहां ?

योग्य शास्त्र के अनुसार मुक्त पुरुष के लिये 'असंप्रज्ञात समाधि में जगत् कहां ?

न्यायशास्त्र के अनुसार मुक्त पुरुष के लिये 'अपवर्ग' में जगत् कहां ?

वैशेषिक शास्त्र के अनुसार मुक्त पुरुष के लिये निःश्रेयस' में जगत् कहां ?

अतः जब आंखें बन जाने पर अर्थात् मुक्त अवस्था में जगत् नहीं रहता, तो बस मिथ्या ही है।

एक बालक को किसी ने दर्पण दिखाकर कहा कि इसमें 'काका' नन्हा (गीगा) रहता है। जब बच्चे ने दर्पण में दृष्टि की तो तत्काल लड़का दिखाई दिया, जब दर्पण हाथ से छोड़ दिया तो काका (नन्हा) कहीं न पाया। चित्त में संशय हुआ कि इस छोटे से दर्पण में लड़का किस प्रकार आ सकता है ? कदाचित् धोका ही हुआ हो। फिर देखा तो दर्पण में मुखड़ा दिखाई दिया। अब तो पूर्ण विश्वास हो गया कि इसमें अवश्य लड़का रहता ही है।

किसी पढ़े-लिखे नातेदार ने आकर बताया कि दर्पण में कोई लड़का सचमुच नहीं रहता, यह केवल तुम्हारा भ्रम है। तब तो वह लड़का बड़े लाड और अभिमान के साथ ज़ोर से कहने लगा ( दर्पण में झांककर ), यह लो सम्मुख दिखाई दे रहा है, कि नहीं? प्रत्यक्ष। तुम कैसे कहते हो नहीं। हाथ कंगन को आरसी क्या है"? शिक्षित नातेदार ने प्यारे बच्चे को यों समझाया।

प्यारे! जब तुम देखते हो तो दर्पण में लड़का प्रकट हो जाता है, तुम इधर कहते हो "यह देखो, दर्पण में लड़का" उधर वह दर्पण में पड़ जाता है। दर्पण में लड़का दिखाना ही उसमें लड़का डाल देना है। तुम दर्पण में मत झांको और लड़का दिखाओ तो सही।

वैसे ही उन लोगों से जो प्रतिसमय मन बचन से कूकते रहते हैं कि" संसार बिलकुल सत्य है, प्रत्यक्ष! राम बड़े प्यार से यह पूछता है कि प्यारो! तुम अपने विचार को उस ओर मत ले जाओ और फिर संसार का एक परमाणु ही कहीं दिखा दो।

तुम्हारा हाथ से संकेत करके अभिमान के साथ यह कहना कि "वह देखो, सम्मुख दृष्टि आ रही है", यह ( कर्म ) ही संसार को विद्यमान कर रहा है। तुम्हारा दिखाना और देखना ही संसार उत्पन्न करना है। तुम्हारे अस्तु से सब कुछ दिखाई देता है।

जब तुम किसी सूक्ष्म विषय की छानबीन में मग्न होते हो, तो यद्यपि आँखें खुली हों, सामने से चाहे जो निकल जाय, दिखाई नहीं देता; कान बंद न हों, पर हल्ला-गुल

सुनाई नहीं देता। कारण यही कि तुमने उस ओर ध्यान नहीं दिया, तुम्हारी ओर से 'अस्तु' नहीं बोला गया। यदि रूप और शब्द तुमसे अलग कुछ अस्तित्व रखते हों, तो आँखें जो खुली थीं और कान भी खुले थे, दिखाई क्यों न दिए? सुनाई क्यों न दिए?

कुछ अनुयोगी महाशय जब सोते हैं तो आंखें खुली रहती हैं, कान तो सबके खुले रहते ही हैं, पर सामने की दीवार, छत, पेड़ आदि खुली आंखों को दिखाई नहीं देते; साथ में सांप लेट जाय, मालूम नहीं पड़ता; नक्कारे बज रहे हों, सुनाई नहीं देता; कारण यही कि ऐ समीक्षक! सबका अस्तित्व तेरे स्वरूप पर स्थिर है, तेरे 'अस्तु' का भिखारी है।

बाल्यावस्था में आंखें, कान और सब ज्ञान-इंद्रियां खुली होती हैं किंतु छत, दीवार, घर, बाग, पुरुष, स्त्री, पशु पक्षी आदि नामरूप कुछ नहीं होते, सुगंध और दुर्गंध कुछ नहीं। यदि ये वस्तुएँ साक्षी से भिन्न अस्तित्व रखती हों, तो बच्चे पर भी अपना अस्तित्व प्रकट कर देतीं। पर नहीं, हमारा साक्षी बनना और उनका विद्यमान होना दोनों सापेक्षक हैं, तुम्हारा देखना ही सृष्टि का प्रत्यक्ष होना है, दृष्टि ही में सृष्टि है, ज्ञाता और ज्ञेय पृथक्-पृथक् नहीं।

**समीक्षक**—( पत्थरको अँगूठे से दबा कर ) यह देखो, शिला कैसी कठोर है, क्या मैंने इसे कठोर बनाया?

**उत्तर**—हां! तुम स्वयं इसे अँगूठे से बल के साथ दबाने में अपनी वृत्ति का ज़ोर मार रहे हो, और कहते हो "कठोरता मुझसे पृथक् है"।

**प्रश्न**—हम मेडिकल कालेज में अनाटोमी (anatomy देह संस्थना विद्या) पढ़ते हैं, तो क्या मनुष्य देह में हड्डियों-पठ्ठों आदि की बनावट हम बना आते हैं ? वह तो पहले ही विद्यमान होती है।

**उत्तर**–(१) मनुष्य देह तुम्हारा है, किसी अन्य का तो नहीं। इस देह में हड्डियों, पठ्ठों, स्नायुओं, नाड़ियों और मस्तिष्क की बनावट तुमसे हुई है, कि कोई अन्य दखल देनेवाला था ? वही तुम प्रत्येक देह में हड्डियों, स्नायुयों नसों और मास्तिष्क की बनावट के कारण हो। जब लाश को चीर फाड़-कर कालिज में अनुभव और निरीक्षण करते हो, तो अपनेही लगाए हुये बाग़ को आप देखते हो, अपने ही घर की स्वयं परीक्षा करते हो।

(२) अस्तु, इस बात को जाने दीजिए। खूब ध्यान करके बताओ कि रक्त का हर एक बूँद और शरीर की बोटी-बोटी, हड्डीका किनका–किनका, चमड़े का खंड-खंड तुम्हारे खयाल [ वृत्ति ] और ध्यान से निकलते हैं कि मरे हुए शव से ?

एक मनुष्य के हाथ में लालटैन ( lantern ) थी। वह जहां जाता था, उजाला ही उजाला कर देता था। आनकर कहने लगा कि सड़क पर तो रंग-रंग की मीनाकारी हो रही है। वैसे ही प्यारे ! जब तुम वनस्पति शास्त्र आदि पढ़ते हो,तो सब पौदों और फूलों में शोभा तुम्हारी लालटैन से आ जाती है। तुम्हारा ही प्रकाश, रंग-रूप चौकोर, गोल होकर दिखाई देता है। कैलिक्स ( Calyx पुष्प का वाह्य ढकना) दृष्टिगत हुआ, तो तुम्हारी ही वृत्ति थी; कोरोला

(Corella-पुष्प का भीतरी ढकना) निकला, तो तुम्हारी लालटैन से: स्टेमन (Stamen) दिखाई दिया तो, तुम्हारा ही विकाश था, स्टाइल (Style-पुष्प शलाका) और पोलन (Pollen-पराग) को निरीक्षण करते समय तुमने अपना प्रकाश तानिक आगे बढ़ा दिया। समस्त सुमन तुम्हारा ख़याल था। अंश तुम थे, संपूर्ण तुम थे।

चमन में सरव कहते हैं तुम्हारे साया-ए-क़द को।
फ़लक पर चाँद रक्खा नाम अक्से-रखे-तावां का॥

इस वास्तविक बात (Stern reality, patent fact) को भूल जाना, अपने आप से बेसुध होकर बाहरी वस्तुओं का दीन होना किस लिये?

**प्रश्न**—तो क्या आदि-अंत, महा प्रलय भी मैं बना आया हूँ। मैं परिमित जीव क्या कर सकता हूँ? कुछ समझ में नहीं आता।

**उत्तर**—स्वप्नावस्था में स्वप्न का भूत और भविष्य तुम्हारे ख्याल में होता है कि बाहर से किसी और शक्ति के अधीन होता है? स्वप्न में एक व्यक्ति से भेट हुई, उसके पिता माता सात पीढ़ी तक तुम बनाते जाओगे, किंतु वह सब तुम्हारे ख्याल में विद्यमान हैं। इसी प्रकार जो कुछ दृष्टि गोचर होता है, यह तुम्हारा ख़याल है साहित उसके भूत और भविष्य के।

स्वप्नावस्था की वस्तुएँ उसी समय उत्पन्न होकर दृष्टि गोचर होने लगती हैं, पर स्वप्न देखने वाले को ऐसी भान होती हैं कि मेरी उत्पात्ति से पहले की हैं। यद्यपि वह उसी समय उत्पन्न होती हैं, पर भ्रांति से ऐसा समझा जाता है

कि पहले पैदा हुई थीं। ठीक इसी प्रकार जाग्रतावस्था के सामान और उनका ज्ञान भी दोनों एक ही समय उत्पन्न होते हैं. किंतु अविद्या के ज़ोर से उन वस्तुओं के संबंध में यह ख़याल भी साथही उत्पन्न होता है कि इन वस्तुओं को थिरता है अर्थात् यह खयाल कि यह वस्तुएं वह ही हैं जो पहले देखी थीं।

हिंदुस्तान का नक़शा स्कूल के कमरे में लटका कर विद्यार्थी देख रहे हैं बदरिकाश्रम उत्तर में है, शृंगेरी दक्षिण में है, जगन्नाथ पूर्व में हैं. द्वारका पश्चिम में है, गंगा बंगाल की खाड़ी में गिरती है,सिंधु अरब के समुद्र में, इत्यादि"। प्यारे विद्यार्थियों ! कहीं इंस्पेक्टर साहब के ( परीक्षक ) के भय के मारे इस बात को न भूल जाना कि नक्शे पर के काशी. हरद्वार, रामेश्वर आदि केवल तुम्हारे ख्याल से कल्पित हैं, और न केवल ये स्थान काग़ज़ के तख्ते पर कल्पना किए हुए हैं, बरन् उनके सम्बन्ध, दूरी, उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम रेखांश (Longitude) और अक्षांश (Latitude) थल, जल आदि भी नक़शे में कल्पित हैं। पाठक ठीक इसी रीति पर जाग्रतावस्था का नक़शा खोलते ही न केवल चित्र-विचित्र बस्तुएँ तुम्हारी माया से प्रकट हो आती हैं, बरन् उनके संबन्ध जैसे "पहिले पीछे होना", "कारण और कार्य होना", "नया या पुराना होना", "निकट या दूर होना" ये भी साथ के साथ ही 'प्रकट हो आते हैं'। 'यह पांच सौ बर्ष का वट का वृक्ष है', इसमें न केवल वट तुम्हारी दृष्टि से पैदा होता है, बरन् उसके पांच सौ या सात सौ बरस भी तत्काल ख़याल से झरते हैं। इस रीति पर न केवल संसार तुम्हारा ख्याल मात्र है, बरन् संसार का आरंभ

( आदि अनादि ) भी तुम्हारी कल्पना है; नहीं-नहीं ! जगत् तो अनादि है, इसका आरंभ तो कभी हुआ ही नहीं, निस्संदेह जगत् अनादि है, प्यारे ! स्वप्न की दृष्टि को कभी स्वप्नावस्था आरंभवाली भी मालूम हुई है ? स्वप्न देखते समय स्वप्नावस्था सदैव अनादि होती है। ज्ञान की सच्ची जागृति आने तक जगत् ठीक स्वप्न की भांति अनादि प्रतीत होता है और क्यों न हो ? जगत् स्वप्न ही तो है।

इश्क़ चूँ सायबां बसहरा ज़द।
अज़ अज़ल ता अबद कशीद तनाब ॥

अर्थ—जब इश्क़ (प्रेम) ने अपना डेरा जंगल में लगाया, तो उसने आदि से अंत तक रस्सी तानी।

एक काग़ज़ पर नदी का चित्र है, इधर उधर अत्यंत सुन्दर हरे भरे किनारे हैं, बीच में नाव चल रही है, नाव में राजा साहब बैठे हैं, राग सुन रहे हैं, छोटा कुँवर राजा साहब के बगल में खेल रहा है। अब देखिए, कुँवरजी के पिता जी तो महाराज हैं, किंतु क्या कुँवर और क्या महा-राज, क्या नाव और क्या नदी, सब का पिता ( उत्पन्न करनेवाला ) चित्रकार का ज़िहन ( ख्याल ) है। इसी प्रकार संसार का बाबा तो आदि मनु, या आदम ही सही, किंतु प्यारे ! सृष्टि और उसके बाबा आदम की इस सब चित्रका बाबा तू है, संसार की नौका तेरे अंतःकरण ( ख्याल ) में हैं, और नौका का मांझी तेरी आज्ञा ( अस्तु ) से प्रकट होता है।—

मैंने माना दहर को हक़ ने किया पैदा, वले।
मैं वह खालिक़ हूँ मेरी कुन से खुदा पैदा हुआ ॥

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वैद्यं पवित्रमोंकार ऋक् साम यजुरेव च ॥
[गीता, १७-६]

I am—of all this boundless Universe—
The Father, Mother, Ancestor, & Gaurd!
The end of Learning! That which purifies
In lustral water! I am Om! I am
Rig-Veda, Sama-Veda, yajur-Veda;
( Sir Edwin Arnold )

अर्थ—मैं इस अनंत सृष्टि का पिता माता पितामह और रक्षक हूं, और ज्ञान तथा पवित्रता का परिणाम हूं, या जानने के योग्य और शुद्ध करनेवाला जो 'ओ३म्' ( प्रणव ) है वह मैं हूं; ऐसे ही ऋग् साम और यजुर्वेद मैं हूं ( या ऐसे ही ऋचाएं वैदिक गीत और यजुस मंत्र सब मैं हूं )

मनोदृश्यमिदं द्वैतं यत्किंचित सचराचरम्।
मनसो ह्यमतीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ॥ ( गौड़पाद )

अर्थ--यह सब और चर अचर रूपी द्वैत तभी तक है, जब तक मन देखनेवाला बना है, मन के शांत हुए द्वैत की गंध शेष नहीं रहती।

अनेन जीवेनात्मना ऽनुप्रविश्य नामरूपे
व्याकरवाणीति। [ सामवेद छांदोग्योपनिषद् ॥

अर्थ--इन शरीरों में प्रविष्ट होकर जीवात्मा के भेद से भिन्न २ नाम रूपों को प्रकट करूं।

( इस से आगे दूसरे अंक-भाग १३-में देखो )

के० सी० बनर्जी के प्रबन्बध से
ऐंग्लो ओरियन्टल प्रेस, लखनऊ. में छपी-१९२१

# श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली

के

## गतवर्षों के १२ भागों का सैट तैयार है

पृष्ठ लगभग १५०० मूल्य बिना जिल्द ६) और सजिल्द ७)
मूल्य आधे सेट का बिना जिल्द ३) और सजिल्द ४॥) रु०
फुटकर भाग का मूल्य बिना जिल्द ॥=) और सजिल्द ॥।=) है
डाक खर्च ग्राहक के ज़िम्मे होगा

---

## वर्तमान वर्ष अर्थात् दीपमालिका सं० १९७९

तक लगभग २००० पृष्ठ के छे भाग प्रकाशित होंगे।

उनका पेशगी वार्षिक शुल्क निम्न लिखित रीति से है

१—अपना भाग केवल बुक पैकिट द्वारा मंगाने वाले से
बिना जिल्द ३) रु० सजिल्द ६) रु०

२—अपना भाग रजिस्टर्ड बुकपैकिट द्वारा मंगाने वाले से
बिना जिल्द ३॥) रु० सजिल्द ६॥) रु०

३—अपना प्रत्येक भाग वी० पी० द्वारा मंगाने वाले को ॥) पेशगी अपना नाम दर्ज रजिस्टर्ड कराने के लिये भेजने होंगे फिर उसे भी वार्षिक शुल्क के भाव से भाग मिलेंगे।

उक्त रीत्यानुसार स्थाई ग्राहक बनने के लिये शीघ्र शुल्क भेजिये या वी० पी० द्वारा भाग भेजने की आज्ञा दीजिये।

मैनेजर,

**श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग।**

लखनऊ.